जुलाई, 2018

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द्र ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

© 2018 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

---

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जुलाई, 2018 अंक - 7

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2018) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

जैसा कि आप लोगों को ज्ञात है, वर्तमान में हमारी बैंकिंग प्रणाली अत्यधिक विषम परिस्थितियों का सामना कर रही है । बैंकों द्वारा कारपोरेट और व्यक्तिगत कर्जदारों को दिए गए कर्जों में से लगभग 12 लाख करोड़ रुपए से अधिक के कर्ज फंसे हुए कर्जों (एन. पी. ए.) में तब्दील हो चुके हैं । सरकार द्वारा इन फंसे हुए कर्जों की समस्या से निपटने के लिए समय-समय पर प्रयास किए गए जो वर्तमान में अपर्याप्त साबित हो चुके हैं । फंसे हुए कर्जों की समस्या से निपटने के लिए अनेक विधियां अधिनियमित की गईं जैसे कि रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993, वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 और कम्पनी अधिनियम, 2013 । ये कानून अनेक मंचों जैसे कि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (बी. आई. एफ. आर.), ऋण वसूली अधिकरण (डी. आर. टी.) और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण (एन. सी. एल. टी.) तथा उनके अपीली अधिकरणों के सृजन का उपबंध करते थे । कम्पनी का परिसमापन उच्च न्यायालयों द्वारा किया जाता था । शोधन अक्षमता और दिवाला के मामलों में प्रेसीडेंसी नगर दिवाला अधिनियम, 1909 और प्रान्तीय दिवाला अधिनियम, 1920 के अधीन कार्यवाही की जाती थी । कुल मिलाकर दिवाला और शोधन अक्षमता के बाबत ढांचा अपर्याप्त और निष्प्रभावी था और इसके परिणामस्वरूप समाधान में अनावश्यक रूप से विलम्ब होता था ।

अतः संसद् द्वारा दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 अधिनियमित की गई । इस संहिता का उद्देश्य कारपोरेट अस्तित्वों, भागीदारी फर्मों और व्यक्तियों का पुनर्गठन करना, ऐसे व्यक्तियों की आस्तियों के मूल्य को अधिकतम करना, उद्यमशीलता का संवर्धन करना, सभी पणधारियों के हितों में संतुलन स्थापित करना, शोध्यों के संदायों की पूर्विकता में फेरफार करना और शोधन अक्षमता निधि स्थापित करना है । दिवाला और शोधन अक्षमता का समय पर समाधान किए जाने के लिए प्रभावी विधिक ढांचा प्रत्यय बाजारों के विकास में सहायता करेगा और उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करेगा । यह कारबार को सरल बनाएगा तथा अधिक विनिधान को सुकर बनाएगा जिससे उच्चतर आर्थिक विधिक दर प्राप्त की जा सके और विकास को गति मिले ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपने पत्रिका की गुणवत्ता को सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जुलाई, 2018

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
जोटन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड **बनाम** पी. एस. एल. लिमिटेड	79
टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड (मैसर्स) **बनाम** मैसर्स सोमा एजेन्सी, जमशेदपुर और अन्य	71
न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती पूनम गुप्ता और अन्य	55
मुगल सरदार हुसैन बेग **बनाम** सय्यद फरवीज़ बेगम	1
यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती बीखा देवी और अन्य	64
संजीव श्रिया **बनाम** स्टेट बैंक आफ इंडिया	12

संसद् के अधिनियम

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	15 – 28

पृष्ठ संख्या

कम्पनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1)

– धारा 433, 434 [सपठित कम्पनी (न्यायालय) नियम, 1959 का नियम 9 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 141] – निगमित कम्पनी के विरुद्ध परिसमापन याचिका का फाइल किया जाना और शासकीय परिसमापक की नियुक्ति – कम्पनी अधिनियम के अधीन चलने वाली कार्यवाहियों पर सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू होंगे जब तक कि कम्पनी अधिनियम के अधीन फाइल की गई कार्यवाही कम्पनी (न्यायालय) नियम के विपरीत न हों – कम्पनी (न्यायालय) नियम का नियम 9 उपबंध करता है कि कम्पनी न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है – सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 सिविल प्रक्रिया संहिता को सिविल अधिकारिता वाले किसी भी न्यायालय में लम्बित कार्यवाहियों पर लागू करती है – यदि इन उपबंधों को संयुक्त रूप से पढ़ा जाए तो यह दर्शित होता है कि कम्पनी न्यायालय को उसके द्वारा पूर्व में पारित किसी भी आदेश को वापस लेने की शक्ति प्राप्त है ।

जोटन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम **पी. एस. एल. लिमिटेड** 79

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31)

– धारा 10, 64(2) [सपठित रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 की धारा 4(ख) और 22] – निगमित लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया का प्रारम्भ – दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम का उत्तरवर्ती कानून है – दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) के रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22

पृष्ठ संख्या

पर आधारित होने के कारण यह दलील कि कम्पनी न्यायालय (उच्च न्यायालय) परिसमापन याचिकाओं के लम्बन की दशा में राष्ट्रीय कम्पनी अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों को व्यादेश द्वारा निषिद्ध करने की शक्ति रखता है, पूर्णतया गलत है और विधायी आशय के सर्वथा विपरीत है ।

जोटन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम **पी. एस. एल. लिमिटेड** 79

– धारा 10, 64(2) [सपठित रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 की धारा 4(ख) और 22 और कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 433 और 434] – कतिपय परिस्थितियों में लेनदारों/कारपोरेट देनदारों को उच्च न्यायालय (कम्पनी न्यायालय) की शरण में जाने से तो वर्जित किया जा सकता है किन्तु दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण की शरण में जाने से नहीं । एकमात्र इस कारणवश कि कम्पनी न्यायालय के समक्ष लम्बित परिसमापन कार्यवाहियों में नोटिस तामील हो जाने के पश्चात् 1956 के कम्पनी अधिनियम के उपबंध अभिभावी होंगे, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध सामान्य कार्यवाहियों में वर्जित नहीं हो जाते ।

जोटन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम **पी. एस. एल. लिमिटेड** 79

– धारा 14, 31(1), 33 और भाग 3 [सपठित भारत का दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड विनियम, 2016 का विनियम 3, 35, 36 और बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993] – दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 और उसके अन्तर्गत विरचित विनियम में पर्याप्त रक्षोपाय उपबंधित किया जाना

पृष्ठ संख्या

– प्रभाव – जब दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 और उसके अन्तर्गत विरचित विनियम में पर्याप्त रक्षोपाय उपबंधित कर दिए गए हैं और प्रमुख देनदार या प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध दायित्व अभिनिश्चित नहीं किए गए हैं, तो ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को जारी नहीं रखा जा सकता और उसको निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के अंतिम होने तक या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा समाधान योजना का अनुमोदन किए जाने तक या धारा 33 के अधीन निगमित देनदार का परिसमापन का आदेश पारित किए जाने तक स्थगित कर दिया जाना चाहिए ।

संजीव श्रिया बनाम **स्टेट बैंक आफ इंडिया** 12

– धारा 14, 31(1), 33 और भाग 3 [सपठित भारत का दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड विनियम, 2016 का विनियम 3, 35, 36 और बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993] – संहिता के उपबंधों का बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी होना – जब संहिता के अन्तर्गत लम्बित कार्यवाहियों में पक्ष दिवाला वृत्तिक के समक्ष उपस्थित हो चुके हैं तो मुख्य देनदार के प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध आक्षेपित कार्यवाही दूषित है – यदि दायित्व अनिर्णय की स्थिति में है और उसको निश्चित रूप नहीं दिया गया है, तो ऐसी स्थिति में विभिन्न अधिकारिता वाले प्राधिकारियों के समक्ष दो समानांतर/पृथक्-पृथक् कार्यवाहियों से यथासंभव बचा जाना चाहिए ।

संजीव श्रिया बनाम **स्टेट बैंक आफ इंडिया** 12

– धारा 63, 64(2), 238 [कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 433 और 434] – दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन कार्यवाहियों के संबंध में कम्पनी

पृष्ठ संख्या

न्यायालय (उच्च न्यायालय) की अधिकारिता अभिव्यक्त रूप से वर्जित है । इसके अतिरिक्त दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) को दृष्टि में रखते हुए कम्पनी न्यायालय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने से व्यादेशित करने से निषिद्ध है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238 कम्पनी अधिनियम, 1956 पर अध्यारोही प्रभाव रखती है ।

जोटन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम **पी. एस. एल. लिमिटेड** 79

— धारा 64(2) — वर्जन — धारा 64(2) में अभिव्यक्त रूप से एक वर्जन समाविष्ट है जो किसी भी न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को प्रदत्त शक्ति के मतावलम्बन में किसी भी कार्यवाही या की जाने वाली कार्यवाही के संबंध में कोई व्यादेश प्रदान करने से निषिद्ध करता है ।

जोटन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम **पी. एस. एल. लिमिटेड** 79

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

— अपील — धारा 173 — प्रश्नगत यान द्वारा दुर्घटना – यान का स्वामी ही यान का चालक होना – यान चालन के दौरान चालक के पास वैध चालन अनुज्ञप्ति का होना — दुर्घटना दावा — यान का तकनीकी त्रुटि के कारण दुर्घटनाग्रस्त होना – यान स्वामी/बीमा कम्पनी का दायित्व — यदि यह साबित हो जाता है कि प्रश्नगत यान के चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण दुर्घटना घटित हुई थी और चालक के पास वैध अनुज्ञप्ति थी तथा दुर्घटना के परिणामस्वरूप आहत

पृष्ठ संख्या

व्यक्ति की मृत्यु हो गई तब न्यायालय बीमा कम्पनी को प्रतिकर देने के लिए दायी ठहरा सकता है, तथापि, बीमा कम्पनी यान के स्वामी से वसूली के लिए कार्रवाई कर सकती है ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती बीखा देवी और अन्य** 64

– धारा 173 – प्रश्नगत यान द्वारा दुर्घटना – यान के स्वामी का ही यान का चालक होना – यान चालन के दौरान चालक के पास वैध चालन अनुज्ञप्ति का होना – दुर्घटना दावा – यान का तकनीकी त्रुटि के कारण दुर्घटनाग्रस्त होना – यान स्वामी/बीमा कम्पनी का दायित्व – यदि यह साबित हो जाता है कि प्रश्नगत यान के चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण दुर्घटना घटित हुई और चालक के पास वैध अनुज्ञप्ति थी तथा दुर्घटना के परिणामस्वरूप आहत व्यक्ति की मृत्यु हो गई तो न्यायालय बीमा कम्पनी को प्रतिकर देने के लिए दायी ठहरा सकता है परन्तु यदि झूठ साक्ष्य के आधार पर झूठा दावा किया जाता है तो बीमा कंपनी यान के स्वामी से वसूली के लिए कार्रवाई कर सकती है ।

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती पूनम गुप्ता और अन्य** 55

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16)

– धारा 49 अरजिस्ट्रीकृत पट्टा-विलेख – ग्राह्यता – किराएदार द्वारा अरजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के आधार पर पट्टे के अवसान से पूर्व वाद परिसर से बेदखल किए जाने का विरोध किया जाना – अरजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख की सांपार्श्विक संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में ग्राह्यता – ऐसे अरजिस्ट्रीकृत विलेख का कब्जे की प्रकृति

पृष्ठ संख्या

को साबित करने के प्रयोजन के लिए उपयोग किया जा सकता है ।

मुगल सरदार हुसैन बेग बनाम **सय्यद फरवीज़ बेगम** 1

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 37, नियम 1 और भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) – धारा 69(2) – रजिस्ट्रीकृत भागीदारी फर्म – रजिस्ट्रीकृत भागीदारी फर्म द्वारा वाद – प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में वादी के दावे को स्वीकार किया जाना – प्रतिवादी द्वारा वाद की ग्राह्यता के संबंध में आपत्ति करते हुए फर्म के रजिस्ट्रीकरण के बारे में इनकार – वादी द्वारा फर्म का रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाना – प्रतिवादी की आपत्ति अधिनियम की धारा 69(2) के अधीन स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है – वादी मांगे गए अनुतोष का हकदार है ।

टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड (मैसर्स) बनाम **मैसर्स सोमा एजेन्सी, जमशेदपुर और अन्य** 71

मुगल सरदार हुसैन बेग

बनाम

सय्यद फरवीज़ बेगम

तारीख 12 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति ए. रामालिंगेश्वर राव

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) – धारा 49 अरजिस्ट्रीकृत पट्टा-विलेख – ग्राह्यता – किराएदार द्वारा अरजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के आधार पर पट्टे के अवसान से पूर्व वाद परिसर से बेदखल किए जाने का विरोध किया जाना – अरजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख की सांपार्श्विक संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में ग्राह्यता – ऐसे अरजिस्ट्रीकृत विलेख का कब्जे की प्रकृति को साबित करने के प्रयोजन के लिए उपयोग किया जा सकता है ।

यह पुनरीक्षण आवेदन विद्वान् मुख्य कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, मारकापुर द्वारा 2016 के मूल वाद सं. 298 में फाइल 2016 के अंतरिम आवेदन सं. 1670 में तारीख 19 जनवरी, 2017 को पारित आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया है । आवेदक वाद में वादी है और प्रत्यर्थी उक्त वाद में प्रतिवादी है । वाद प्रत्यर्थी को वाद की अनुसूची में दिए गए परिसर से आवेदक को उस समय तक बेदखल करने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया था जब तक कि तारीख 4 अप्रैल, 2016 के करार के अधीन पट्टे की अवधि समाप्त न हो जाए । जब स्थायी व्यादेश की मंजूरी के लिए आवेदन में जांच आरंभ की गई तो आवेदक ने तारीख 4 अप्रैल, 2016 के उक्त करार को चिह्नांकित करने का प्रयत्न किया जो कि एक पट्टा करार था और प्रत्यर्थी ने उस पर इस आधार पर आक्षेप किया कि उक्त पट्टा करार अरजिस्ट्रीकृत होने के कारण साक्ष्य में ग्राह्य नहीं था । आवेदक ने यह कथन किया कि यद्यपि यह एक अरजिस्ट्रीकृत पट्टा करार है तथापि, इसको कब्जा साबित करने के लिए और कब्जे की प्रकृति को साबित करने के सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए

विचार में लिया जा सकता है । तथापि, प्रत्यर्थी ने इस आधार पर आक्षेप किया कि अरजिस्ट्रीकृत पट्टा करार सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है क्योंकि पट्टे का तथ्य विवादास्पद विवाद्यक है । अतः पट्टा करार को चिह्नांकित नहीं किया जा सकता और इस पर सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए भी विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वतः मुख्य वाद पट्टे के निबंधनों पर आधारित है । विचारण न्यायालय ने इस आधार पर आक्षेप स्वीकार कर लिया कि पट्टा करार अरजिस्ट्रीकृत था । उक्त आदेश को आक्षेपित करते हुए उपर्युक्त सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया है । पुनरीक्षण आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – खंड न्यायपीठ ने इस मुद्दे पर दिए गए विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि उच्चतम न्यायालय का ऐसा कोई निर्णय नहीं है जो यह अधिकथित करता हो कि कोई अरजिस्ट्रीकृत पट्टा विलेख जिसका रजिस्ट्रीकरण कराना अनिवार्य हो, कब्जे की प्रकृति को साबित करने के प्रयोजन के लिए भी साक्ष्य में ग्रहण नहीं किया जा सकता । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यद्यपि ऐसे पट्टा विलेख को, ऐसे पट्टे के निबंधनों को और स्वतः पट्टे को साबित करने के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता तथापि, कब्जे की प्रकृति को साबित करने के लिए इसे निश्चित रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है और निर्देश का तद्नुसार उत्तर दिया गया था । विनिश्चयों के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि ये विनिश्चय हमारे समक्ष के आवेदक के पक्षकथन का समर्थन करते हैं । यलप्पू उमा महेश्वरी वाले मामले का विनिश्चय भी एक ऐसे मामले से संबंधित है जो विभाजन के एक वाद से उद्भूत हुआ था और माननीय उच्चतम न्यायालय का मत हमारे उच्च न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा चिनप्पा रेड्डीगरी पेड्डा मुथियाला रेड्डी वाले मामले में अभिव्यक्त मत से कतिपय सीमा तक समान था । व्यास शर्मा वाले मामले में यह बिन्दु उद्भूत नहीं हुआ था और इसलिए यह वर्तमान मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है । मोदुरा बोइना दीपिका वाला मामला एक ऐसा मामला है जो हकदारी की घोषणा और कब्जे के परिदान के संबंध में उद्भूत हुआ था । इस न्यायालय ने चिनप्पा रेड्डीगरी पेड्डा मुथियाला रेड्डी वाले मामले और यलप्पू उमा महेश्वरी वाले मामलों पर विचार किया और इन मामलों के तथ्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि विभाजन विलेख और विक्रय विलेख साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं और इनका सांपार्श्विक प्रयोजनों के लिए अवलंब नहीं

लिया जा सकता । चूंकि यह विनिश्चय उस मामले के तथ्यों के आधार पर दिया गया था और विधि के इस बिन्दु पर अभिव्यक्त किसी प्रतिकूल मत के अभाव में आवेदक द्वारा उद्धृत विनिश्चयों में अधिकथित सिद्धांत मामले को लागू होते हैं और इसे दृष्टिगत करते हुए आवेदक द्वारा अवलंब लिए जाने के लिए ईप्सित दस्तावेज का सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए अवलंब लिया जा सकता है । तद्नुसार 2016 के मूल वाद सं. 298 में फाइल 2016 के अंतरिम आवेदन सं. 1670 में निचले न्यायालय द्वारा तारीख 19 ज़नवरी, 2017 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है और सिविल पुनरीक्षण आवेदन मंजूर करते हुए आवेदक को सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए दस्तावेज पेश करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । साथ ही साथ इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन में लंबित प्रकीर्ण आवेदनों को यदि कोई हों, बंद किया जाता है । (पैरा 12 और 16)

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2017 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 1115.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से नामावरापलू कांतिबाबू

प्रत्यर्थी की ओर से छल्ला शिवशंकर

न्यायमूर्ति ए. रामालिंगेश्वर राव – याची के विद्वान् काउंसेल और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना गया ।

2. यह पुनरीक्षण आवेदन विद्वान् मुख्य कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, मारकापुर द्वारा 2016 के मूल वाद सं. 298 में फाइल 2016 के अंतरिम आवेदन सं. 1670 में तारीख 19 जनवरी, 2017 को पारित आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया है ।

3. आवेदक वाद में वादी है और प्रत्यर्थी उक्त वाद में प्रतिवादी है । वाद प्रत्यर्थी को वाद की अनुसूची में दिए गए परिसर से आवेदक को उस समय तक बेदखल करने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया था जब तक कि तारीख 4 अप्रैल, 2016 के करार के अधीन पट्टे की अवधि समाप्त न हो जाए । जब स्थायी व्यादेश की मंजूरी के लिए आवेदन में जांच आरंभ की गई तो आवेदक ने तारीख 4 अप्रैल, 2016

के उक्त करार को चिह्नांकित करने का प्रयत्न किया जो कि एक पट्टा करार था और प्रत्यर्थी ने उस पर इस आधार पर आक्षेप किया कि उक्त पट्टा करार अरजिस्ट्रीकृत होने के कारण साक्ष्य में ग्राह्य नहीं था । आवेदक ने यह कथन किया कि यद्यपि यह एक अरजिस्ट्रीकृत पट्टा करार है तथापि, इसको कब्जा साबित करने के लिए और कब्जे की प्रकृति को साबित करने के सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए विचार में लिया जा सकता है । तथापि, प्रत्यर्थी ने इस आधार पर आक्षेप किया कि अरजिस्ट्रीकृत पट्टा करार सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है क्योंकि पट्टे का तथ्य विवादास्पद विवाद्यक है । अतः पट्टा करार को चिह्नांकित नहीं किया जा सकता और इस पर सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए भी विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वतः मुख्य वाद पट्टे के निबंधनों पर आधारित है । विचारण न्यायालय ने इस आधार पर आक्षेप स्वीकार कर लिया कि पट्टा करार अरजिस्ट्रीकृत था । उक्त आदेश को आक्षेपित करते हुए उपर्युक्त सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया है ।

4. आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने राना विद्या भूषण सिंह बनाम रती राम ; सतीश चन्द माखन बनाम गोवर्धन दास व्यास ; और ए. किशोर **उर्फ** कांता राव बनाम जी. श्रीनिवासुलू वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि पट्टा विलेख कब्जा और कब्जे की प्रकृति को साबित करने के लिए सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य है भले ही पट्टा विलेख के निबंधनों को साबित करने के लिए न हो और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश त्रुटिपूर्ण है ।

5. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि पट्टा विलेख को सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए भी विचार में नहीं लिया जा सकता और उन्होंने सतीश चन्द माखन बनाम गोवर्धन दास व्यास ; के. बी. साहा एंड संस प्राइवेट लिमिटेड बनाम डेवलपमेंट कनसल्टेंट लिमिटेड ; के. राममूर्ति बनाम सी. सुरेन्द्रनाथ रेड्डी ; येल्लपू उमा महेश्वरी बनाम बुद्ध जगदीशवर राव, व्यासाश्रमम ; अमन्दरु विलेज बनाम छुन्दरू भूषण कुमारी और मोदुरबीना दीपिका बनाम कूना सुजाता देवी वाले मामलों का अवलंब लिया है ।

6. रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 ऐसे रजिस्ट्रीकृत दस्तावेजों के प्रभाव के बारे में उपबंध करती है जिन्हें रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक है और उक्त धारा में दिया गया सुसंगत उपबंध इस प्रकार

है :–

"49. दस्तावेजों के अरजिस्ट्रीकरण का प्रभाव जिनका रजिस्ट्रीकरण कराया जाना आवश्यक है – किसी संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में प्राप्त (क) (ख) (ग) ऐसी संपत्ति पर प्रभावी या ऐसी शक्ति प्रदत्त नहीं करेगा जब तक कि ये रजिस्ट्रीकृत न हो ।"

7. परन्तु कोई अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज जो स्थावर संपत्ति से संबंधित हो और इस अधिनियम द्वारा या संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 द्वारा रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक हो, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 के अध्याय 2 के अधीन विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए किसी वाद में किसी संविदा के साक्ष्य के रूप में अथवा संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53ख के प्रयोजनों के लिए किसी संविदा के भागतः अनुपालन के साक्ष्य के रूप में अथवा किसी आनुषंगी संव्यवहार के जिसको रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा प्रभावी किए जाने की आवश्यकता न हो, साक्ष्य के रूप में प्राप्त किया जा सकता है ।

8. इस न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ ने चिनप्पा रेड्डीगरी पेड्डा मुथालारेड्डी बनाम चिनप्पा रेड्डीगरी वेंकटरेड्डी वाले मामले में अरजिस्ट्रीकृत-विभाजन विलेख के प्रभाव की परीक्षा करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि कोई अरजिस्ट्रीकृत विभाजन-विलेख साक्ष्य में ग्राह्य है और इस पर विभाजन के निबंधनों के लिए विचार नहीं किया जा सकता तथापि, हैसियत के संबंध में विभाजन को साबित करने के प्रयोजन के लिए विचार में लिया जा सकता है ।

9. माननीय उच्चतम न्यायालय ने राणा विद्या भूषण सिंह वाले मामले में एक ऐसे करार पर विचार किया था जो अरजिस्ट्रीकृत था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह 15 वर्षों की अवधि के लिए किराएदार के हक में कोई अधिकार सृजित नहीं करता और यह दावे के समर्थन में साक्ष्य में ग्राह्य है । तथापि, इस अभिवाक् के समर्थन में कि वह किराएदार के रूप में काबिज था, पट्टे के ऐसे करार में उल्लिखित विषयवस्तु का अवलंब लेने के लिए हकदार था ।

10. माननीय उच्चतम न्यायालय ने सतीश चन्द्र माखन वाले मामले में पट्टा करार के अरजिस्ट्रीकृत प्रलेख के प्रभाव की परीक्षा की थी । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यद्यपि पट्टा करार का अरजिस्ट्रीकृत प्रलेख रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17(1)(घ) के अधीन यथा अपेक्षित

रजिस्ट्रीकरण के अभाव में एक विधिमान्य पट्टा सृजित करने के लिए प्रभावी नहीं था और पट्टे के संव्यवहार को साबित करने के लिए साक्ष्य में भी अग्राह्य था तथापि, यह प्रतिवादियों के कब्जे की प्रकृति को उपदर्शित करने के सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के अधीन ग्राह्य था । तथापि, उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि परंतुक अप्रवर्तनीय था क्योंकि पट्टे के निबंधनों का, इसके अर्थान्तर्गत सांपार्श्विक प्रयोजन नहीं है ।

11. इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने ए. किशोर उर्फ कांता राव वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित राणा विद्या भूषण वाले मामले के विनिश्चय और अन्य विनिश्चयों पर निम्नलिखित प्रश्नों पर विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए निर्देश का उत्तर देते हुए विचार किया था : क्या प्रश्नगत दस्तावेज मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए साक्ष्य में ग्राह्य है ?

12. उस मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों के समान थे क्योंकि यह स्थायी व्यादेश के एक वाद में उत्पन्न हुए थे जहां एक दस्तावेज अर्थात् पट्टा विलेख को विचार में लेने के लिए बल दिया गया था । रजिस्ट्रीकरण के संबंध में आक्षेप में किया गया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने हुसैन बेगम बनाम मदु रंगाराव, रिलांगी नागेश्वर राव बनाम तथा चिरंजीव राव और सतीश चन्द माखन वाले मामलों के विनिश्चयों की अवेक्षा करते हुए यह मत व्यक्त किया कि चूंकि ऐसे प्रश्न उत्पन्न हुए हैं इसलिए यह बेहतर होगा कि इस पर खंड न्यायपीठ द्वारा प्राधिकृत रूप से निर्णय दिया जाए । खंड न्यायपीठ ने इस मुद्दे पर दिए गए विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि उच्चतम न्यायालय का ऐसा कोई निर्णय नहीं है जो यह अधिकथित करता हो कि कोई अरजिस्ट्रीकृत पट्टा विलेख जिसका रजिस्ट्रीकरण कराना अनिवार्य हो, कब्जे की प्रकृति को साबित करने के प्रयोजन के लिए भी साक्ष्य में ग्रहण नहीं किया जा सकता । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यद्यपि ऐसे पट्टा विलेख को, ऐसे पट्टे के निबंधनों को और स्वतः पट्टे को साबित करने के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता तथापि, कब्जे की प्रकृति को साबित करने के लिए इसे निश्चित रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है और निर्देश का तद्नुसार उत्तर दिया गया था ।

13. अतः माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत और इस

न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा अभिव्यक्त हमारे समक्ष के आवेदक के हक में जाते हैं ।

14. प्रत्यर्थी द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों में भिन्न मत नहीं अपनाया गया है जैसा कि हमारी खंड न्यायपीठ द्वारा ए. किशोर उर्फ कांता राव वाले मामले में अवेक्षा की गई है । खंड न्यायपीठ द्वारा सतीश चन्द्र माखन वाले मामले पर विचार किया गया था । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा के. बी. साहा एंड संस प्राइवेट लिमिटेड वाले मामले में परिसर के आवासीय उपयोग के लिए मकान मालिक और कंपनी के बीच एक अरजिस्ट्रीकृत पट्टा करार के प्रभाव पर विचार किया गया था । पट्टा विलेख के खंड 9 का अतिक्रमण उक्त मामले में विवाद्यक था क्योंकि इसमें कंपनी के नामित अधिकारी के लिए परिसर दिया गया था और चूंकि मामले का विनिश्चय उक्त पद के निर्वचन और प्रवर्तन पर आधारित था इसलिए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पट्टा करार के भाग को विरचित करने वाला उक्त महत्वपूर्ण पद सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए नहीं माना जा सकता । उच्चतम न्यायालय ने मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार अभिनिर्धारित किया था :–

> "21. इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों और उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों में जो ऊपर निर्दिष्ट किए गए हैं, अधिकथित सिद्धांतों से यह स्पष्ट होता है कि – 1. रजिस्ट्रीकरण किए जाने के लिए अपेक्षित कोई दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के अधीन साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है । 2. तथापि, किसी अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज का उपयोग रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के परंतुक में यथा उपबंधित सांपार्श्विक प्रयोजन के साक्ष्य में रूप में ग्रहण किया जा सकता है । 3. कोई सांपार्श्विक संव्यवहार स्वतंत्र होना चाहिए या विभाजनीय होना चाहिए और संव्यवहार इस प्रकार प्रभावी होना चाहिए जिसके रजिस्ट्रीकरण की विधि अपेक्षा करती है । 4. कोई सांपार्श्विक संव्यवहार ऐसा संव्यवहार होना चाहिए जो स्वतः किसी रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज द्वारा लागू किए जाने के लिए अपेक्षित न हो अर्थात् संव्यवहार स्थावर संपत्ति में कोई अधिकार, हक या हित सृजित करता हो और जिसका मूल्य 100/- रुपए या उससे अधिक हो । 5. यदि कोई दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण के अभाव में साक्ष्य में अग्राह्य है तो इसका कोई भी निबंधन साक्ष्य में ग्रहण नहीं किया

जा सकता और किसी महत्वपूर्ण खंड को साबित करने के प्रयोजन के लिए किसी दस्तावेज का उपयोग सांपार्श्विक प्रयोजन के रूप में नहीं किया जाएगा ।

22. हमारे मतानुसार यह नहीं कहा जा सकता कि प्रश्नगत पट्टा करार में विशिष्ट खंड सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि वाद परिसर प्रत्यर्थी के विशिष्ट नामित अधिकारी के लिए ही किराए पर दिया गया था और तद्नुसार उक्त अधिकारी द्वारा उक्त परिसर खाली किए जाने के पश्चात् प्रत्यर्थी परिसर को किसी अन्य कर्मचारी को आबंटित करने का हकदार नहीं था और इसलिए वह बेदखल किए जाने योग्य था जो कि हमारे मतानुसार पट्टा करार के एक भाग का महत्वपूर्ण निबंधन था । अतः ऐसा कोई खंड अर्थात् इस मामले में पट्टा करार का खंड 9 यह निष्कर्ष निकालने के लिए सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए विचार में नहीं लिया जा सकता क्योंकि प्रत्यर्थी पट्टा करार के खंड 9 के अतिक्रमण के कारण बेदखल किए जाने योग्य था । इस स्थिति को दृष्टिगत करते हुए हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते कि पट्टा करार जो स्वीकृततः अरजिस्ट्रीकृत है, के खंड 9 को केवल इस कारण वाद परिसर से प्रत्यर्थी को बेदखल करने के प्रयोजन के लिए विचार में लिया जा सकता है क्योंकि प्रत्यर्थी परिसर के लिए नामित अधिकारी के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति को परिसर देने के लिए हकदार नहीं था । चूंकि पट्टा विलेख के करार में विशिष्ट खंड का निर्वचन अन्तर्वलित था इसलिए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उक्त खंड विचार में नहीं लिया जा सकता ।"

15. इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने के. राममूर्ति वाले मामले में ऐसे विभिन्न विनिश्चयों पर विस्तारपूर्वक विचार किया था जो सांपार्श्विक प्रयोजन के विषय और रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के परंतुक के प्रभाव से संबंधित थे और जो रजिस्ट्रीकृत दान व्यवस्थापन विलेख पर आधारित स्थायी व्यादेश के लिए एक वाद में उद्भूत हुए थे तथा जो एक अरजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख से संबंधित घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया था । इस न्यायालय ने अंततः इस प्रकार अभिनिर्धारित किया था :—

"ऊपर चर्चा की गई मामला विधि के संक्षिप्त निर्देश के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है –

(i) किसी दस्तावेज को जिसका अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरण किया जाना है, तथापि, रजिस्ट्रीकरण नहीं कराया गया है, किसी संपत्ति या ऐसी शक्ति प्रदत्त करने वाले किसी संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता । 'स्थावर संपत्ति को प्रभावी करने वाले' पद पर रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17(ख) के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए विचार किए जाने की आवश्यकता है जिसका यह अर्थ है कि कोई लिखत जो स्थावर संपत्ति में किसी अधिकार को सृजित, घोषित, समनुदेशित, परिसीमित या समाप्त करे, स्थावर संपत्ति को लागू होती है ।

(ii) रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के अधीन अधिरोपित निर्बंधन ऐसे दस्तावेज के उपयोग के लिए परिसीमित है जो स्थावर संपत्ति को लागू होता हो और जो स्थावर संपत्ति को लागू होने वाले किसी संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में दस्तावेज के उपयोग के लिए हो ।

(iii) यदि साक्ष्य में दस्तावेज को रखने वाली वस्तु ऊपर खंड (ii) में उल्लिखित दोनों प्रयोजनों के अन्तर्गत नहीं आती है तो दस्तावेज को किसी भी प्रकार से साक्ष्य से विवर्जित नहीं किया जा सकता ।

(iv) कोई सांपार्श्विक संव्यवहार स्वतंत्र होना चाहिए या संपत्ति से संबंधित किसी संव्यवहार से विभाजनीय होना चाहिए अर्थात् संव्यवहार स्थावर संपत्ति में कोई अधिकार, हक या हित सृजित करने वाला होना चाहिए और उसका मूल्य एक सौ रुपए और उससे अधिक होना चाहिए ।

(v) 'सांपार्श्विक प्रयोजन' वाक्य संव्यवहार के निर्देश में है न कि वाद में दावा किए गए अनुतोष के संबंध में ।

(vi) रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के परंतुक में सांपार्श्विक प्रयोजन का उल्लेख न होकर सांपार्श्विक संव्यवहार का उल्लेख है अर्थात् स्थावर संपत्ति से संबंधित संव्यवहार के लिए सांपार्श्विक शब्द इस कारण से है कि रजिस्ट्रीकरण आवश्यक है

बजाय दस्तावेज के सांपार्श्विक होने ।

(vii) यह तथ्य कि क्या संव्यवहार सांपार्श्विक है या नहीं, दस्तावेज की प्रकृति, प्रयोजन और उसमें किए गए उल्लेख के आधार पर विनिश्चित किया जाएगा ।

25. इस विवाद्यक के ऊपर चर्चा की गई विधिक प्रतिपादनाओं को देखते हुए चर्चा तब तक पूरी नहीं होगी जब तक सांपार्श्विक संव्यवहार गठित करने वाले कतिपय दृष्टांत उद्धृत न किए जाएं जैसा कि राधोमल अलुमल बनाम के. बी. अल्लाह बख्श खां जही मोहम्मद उमर ए. आई. आर. (29) 1942 सिन्ध 27 और अन्य निर्णयों में अधिकथित किया गया है । ये इस प्रकार हैं – (क) यदि कोई पट्टाकर्ता किसी अरजिस्ट्रीकृत पट्टे के जो वाद की तारीख पर पर्यवसित हो गया है, आधार पर किराए के लिए अपने पट्टा ग्राह्यता के विरुद्ध वाद दायर करता है तो वह दो कारणों से सफल नहीं होगा अर्थात् पट्टा जो रजिस्ट्रीकृत किए जाने योग्य है, रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया गया है और पट्टे की अवधि वाद फाइल करने की तारीख को पर्यवसित हो गई है । तथापि, ऐसे किसी पट्टा विलेख का वादी द्वारा प्रतिवादी के कब्जे की प्रकृति को साबित करने के लिए पट्टे के पर्यवसान के पश्चात् कब्जे के लिए फाइल किए गए किसी वाद में अवलंब नहीं लिया जा सकता । (ख) किसी अरजिस्ट्रीकृत बंधक विलेख को जिसको रजिस्ट्रीकृत किए जाने की आवश्यकता है, धनीय ऋण को साबित करने के लिए साक्ष्य में प्राप्त किया जा सकता है बशर्ते कि बंधक विलेख में बंधककर्ता द्वारा संदाय करने के लिए वैयक्तिक रूप से प्रतिज्ञा की गई हो [क्वीन इम्प्रेस बनाम रामा तिवान (92) 15 मद्रास 253 ; पी. वी. एम. कान्हू मोयदू बनाम टी. माधव मेनन (09) 32 मद्रास 410 और वाणी बनाम बानी (96) 20 बोम्बे 553 वाले मामले देखिए] । (ग) पक्षकार किसी अरजिस्ट्रीकृत करार में जिसमें कतिपय भूमियों में हिस्सा होने के अधिकार का उल्लेख है और नकद भत्ते में हिस्सा होने का भी उल्लेख है, पक्षकार जंगम संपत्ति के संबंध में दस्तावेज पर वाद संस्थित करने का हकदार है [हनुमनतप्पा राव बनाम रमाबाई हनुमंत (19) 6 1919 बोम्बे 38 = 21 बोम्बे ऐल्लार 716 वाले मामले देखिए] । (घ) कोई अरजिस्ट्रीकृत दान विलेख जिसका रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 के अधीन

रजिस्ट्रीकरण आवश्यक है, साक्ष्य में ग्राह्य है तथापि, दान को साबित करने के लिए नहीं अपितु उस व्यक्ति के कब्जे की प्रकृति के निर्देश द्वारा स्पष्ट करने के लिए जिसने भूमि धारित की है और जिसने इसके बारे में दावा किया है तथापि, ऐसे दान विलेख के आधार पर नहीं अपितु प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् द्वारा [वारदापिल्लई बनाम जीवारत्नम्मल (43) मद्रास 244 (पी. सी.) वाला मामला देखिए] । (ङ) स्थायी संपत्ति के किसी विक्रय विलेख को जिसका रजिस्ट्रीकरण किया जाना अपेक्षित है तथापि, इसका रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया गया है, कब्जे की प्रकृति को उपदर्शित करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है । [राधो मल अलुमल, बोंदर सिंह बनाम निहाल सिंह ; ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 1905 और ए. किशोर उर्फ कांता राव बनाम जी. श्रीनिवासुलू 2004 (3) ए. एल. डी. 817 (डी. बी.) वाले मामले देखिए] । उपर्युक्त उदाहरण केवल दृष्टांत स्वरूप हैं न कि निःशेष रूप में । ऐसी अन्य स्थितियां हो सकती हैं जहां कोई संव्यवहार उस संव्यवहार के सांपार्श्विक हो सकता है जो स्थावर संपत्ति को प्रभावित करता हो । न्यायालयों को उपर्युक्त की गई चर्चा और इससे संबंधित अन्य विभिन्न निर्णयों में उल्लिखित सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर सतर्कतापूर्वक विनिश्चय करना चाहिए ।"

16. उपर्युक्त विनिश्चयों के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि ये विनिश्चय हमारे समक्ष के आवेदक के पक्षकथन का समर्थन करते हैं । यलप्पू उमा महेश्वरी वाले मामले का विनिश्चय भी एक ऐसे मामले से संबंधित है जो विभाजन के एक वाद से उद्भूत हुआ था और माननीय उच्चतम न्यायालय का मत हमारे उच्च न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा चिनप्पा रेड्डीगरी पेड्डा मुथियाला रेड्डी वाले मामले में अभिव्यक्त मत से कतिपय सीमा तक समान था । व्यास शर्मा वाले मामले में यह बिन्दु उद्भूत नहीं हुआ था और इसलिए यह वर्तमान मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है । मोदुरा बोइना दीपिका वाला मामला एक ऐसा मामला है जो हकदारी की घोषणा और कब्जे के परिदान के संबंध में उद्भूत हुआ था । इस न्यायालय ने चिनप्पा रेड्डीगरी पेड्डा मुथियाला रेड्डी वाले मामले और यलप्पू उमा महेश्वरी वाले मामलों पर विचार किया और इन मामलों के तथ्यों के आधर पर यह अभिनिर्धारित किया कि विभाजन विलेख और विक्रय विलेख साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं और इनका सांपार्श्विक प्रयोजनों के

लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता । चूंकि यह विनिश्चय उस मामाले के तथ्यों के आधार पर दिया गया था और विधि के इस बिन्दु पर अभिव्यक्त किसी प्रतिकूल मत के अभाव में आवेदक द्वारा उद्धृत विनिश्चयों में अधिकथित सिद्धांत मामले को लागू होते हैं और इसे दृष्टिगत करते हुए आवेदक द्वारा अवलंब लिए जाने के लिए ईप्सित दस्तावेज का सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए अवलंब लिया जा सकता है । तद्नुसार 2016 के मूल वाद सं. 298 में फाइल 2016 के अंतरिम आवेदन सं. 1670 में निचले न्यायालय द्वारा तारीख 19 जनवरी, 2017 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है और सिविल पुनरीक्षण आवेदन मंजूर करते हुए आवेदक को सांपार्श्विक प्रयोजन के लिए दस्तावेज पेश करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । साथ ही साथ इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन में लंबित प्रकीर्ण आवेदनों को यदि कोई हों, बंद किया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

(2018) 2 सि. नि. प. 12 **इलाहाबाद**

संजीव श्रिया

बनाम

स्टेट बैंक आफ इंडिया

तारीख 6 सितम्बर, 2017

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31) – धारा 14, 31(1), 33 और भाग 3 [सपठित भारत का दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड विनियम, 2016 का विनियम 3, 35, 36 और बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993] – दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 और उसके अन्तर्गत विरचित विनियम में पर्याप्त रक्षोपाय उपबंधित किया जाना – प्रभाव – जब दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 और उसके अन्तर्गत विरचित विनियम में पर्याप्त रक्षोपाय उपबंधित कर दिए गए हैं और प्रमुख देनदार या

प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध दायित्व अभिनिश्चित नहीं किए गए हैं, तो ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को जारी नहीं रखा जा सकता और उसको निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के अंतिम होने तक या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा समाधान योजना का अनुमोदन किए जाने तक या धारा 33 के अधीन निगमित देनदार का परिसमापन का आदेश पारित किए जाने तक स्थगित कर दिया जाना चाहिए ।

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31) – धारा 14, 31(1), 33 और भाग 3 [सपठित भारत का दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड विनियम, 2016 का विनियम 3, 35, 36 और बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993] – संहिता के उपबंधों का बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी होना – जब संहिता के अन्तर्गत लम्बित कार्यवाहियों में पक्ष दिवाला वृत्तिक के समक्ष उपस्थित हो चुके हैं तो मुख्य देनदार के प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध आक्षेपित कार्यवाही दूषित है – यदि दायित्व अनिर्णय की स्थिति में है और उसको निश्चित रूप नहीं दिया गया है, तो ऐसी स्थिति में विभिन्न अधिकारिता वाले प्राधिकारियों के समक्ष दो समानांतर/पृथक्-पृथक् कार्यवाहियों से यथासंभव बचा जाना चाहिए ।

संक्षेप में दोनों ही रिट याचिकाओं के तथ्य ये हैं कि याची कानपुर स्थित मैसर्स एल. एम. एल. लिमिटेड, जिसको औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड द्वारा तारीख 8 मई, 2007 के आदेश द्वारा "रुग्ण औद्योगिक कम्पनी" घोषित किया जा चुका है, के प्रत्याभूतिदाता हैं । भारतीय स्टेट बैंक ने इलाहाबाद के ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष 1993 के बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन मुख्य ऋणी कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) और प्रत्याभूतिदाताओं श्री दीपक सिंघानिया, श्री संजीव श्रिया और श्री अनुराग कुमार सिंघानिया, के विरुद्ध 72,75,29,053/- रुपए की वसूली के लिए 2017 का मूल आवेदन संख्या 238 फाइल किया । मामला 2017 के अन्तर्वर्ती आवेदन संख्या 1013 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । याचियों, जिनको ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष प्रतिवादी संख्या 2 से 4 के रूप में संख्यांकित किया गया है, ने ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को स्थगित किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन प्रस्तुत किया । ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 6 जुलाई, 2017 को दोनों पक्षों

को सुना और इलाहाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा तारीख 30 मई, 2017 को कम्पनी पिटिशन संख्या आई. बी. (55) इलाहाबाद/2017 पारित आदेश के आधार पर मैसर्स एल. एम. एल. लिमिटेड, जो एक पब्लिक लिमिटेड/ऋणी कम्पनी है, के विरुद्ध लम्बित कार्यवाही को स्थगित करते हुए 2016 दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन लम्बित विधिक कार्यवाहियों पर ऋण स्थगन अधिरोपित कर दिया और याचियों को निर्देशित किया कि शपथपत्र पर स्थायी आप्रवारा या वीजा या यात्रा अनुमति के लिए लम्बित आवेदनों के विवरण, उनके द्वारा भारत या विदेशों में अनन्य रूप से या भागीदारी में किए जाने वाले कारबार के विवरण, बैंक खातों में जमा को सम्मिलित करते हुए उनकी चल और अचल आस्तियों के समस्त विवरण शपथपत्र पर विदेश मंत्रालय के प्राधिकारियों को दें और उनको लिखित कथन फाइल करने के लिए भी निदेशित किया गया । दोनों ही रिट याचिकाओं में याचियों ने इलाहाबाद के ऋण वसूली अधिकरण द्वारा तारीख 6 जुलाई, 2017 को पारित उपरोक्त आक्षेपित आदेश को चुनौती दी । याचिकाओं का निस्तारण करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोनों पक्षों द्वारा दी गई दलीलों के उपरान्त जो तथ्यात्मक स्थिति न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत अभिलेख से उत्पन्न होती है, यह है कि याची कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के पूर्व निदेशक हैं । भारतीय स्टेट बैंक ने ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) को मुख्य ऋणी के रूप में दर्शित करते हुए और याचियों को प्रत्याभूतिदाता के रूप में दर्शित करते हुए 72,75,29,053.71 रुपए की वसूली के लिए प्रश्नगत मूल आवेदन फाइल किया है । याचियों ने उनके विरुद्ध फाइल की गई कार्यवाही को स्थगित किए जाने के लिए आवेदन फाइल किए हैं । ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 6 जुलाई, 2017 के आक्षेपित आदेश द्वारा कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के विरुद्ध लम्बित कार्यवाहियों को इलाहाबाद स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा पारित तारीख 30 मई, 2017 के आदेश, जिसके द्वारा 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन समस्त विधिक कार्यवाहियों पर ऋणस्थगन अधिरोपित कर दिया गया, के आधार पर स्थगित कर दिया और याचियों को लिखित कथन फाइल करने और विदेश आव्रजन या वीजा या यात्रा परमिटों के लिए विदेश मंत्रालय प्राधिकारियों के समक्ष लम्बित आवेदनों के विवरण, भारत में

और विदेश में उनकी स्वामित्वाधीन संपत्तियों के विवरण, भारत में और विदेशों मे उनके अनन्य कारबार या भागीदारी के अन्तर्गत कारबार के विवरण और शपथपत्र पर उनके बैंक खातों और निक्षेपों को सम्मिलित करते हुए समस्त चल और अचल आस्तियों, के विवरण प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया है । इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके दायित्व समकालीन हैं किन्तु सम्पूर्ण कार्यवाही वर्तमान में अनिश्चित स्थिति में हैं और एक ही वाद कारण के लिए दो अलग-अलग कार्यवाहियां, एक ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष और दूसरी राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष नहीं चल सकती । 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता का उद्देश्य स्पष्ट हैं और धारा 60(1) के अधीन समाविष्ट उपबंधों के अनुसार के निगमित देनदारों और व्यक्तिगत प्रत्याभूतिदाताओं को सम्मिलित करते हुए निगमित व्यक्तित्वों के लिए दिवाला समाधान और परिसमापन के संबंध में न्यायनिर्णायक प्राधिकारी राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण होगा । राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण पहले ही कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के विरुद्ध दिवाला समाधान की प्रक्रिया से संबद्ध है और इसके अतिरिक्त भारतीय स्टेट बैंक भी अपने दावे के संबंध में उक्त कार्यवाही में उपस्थित हो चुका है । भारतीय स्टेट बैंक ने किसी भी समय-बिन्दु पर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों से स्वयं को असबंद्ध नहीं किया है और वह सक्रिय रूप से कार्यवाही में भाग ले रहा है । इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने अपने तारीख 30 मई, 2017 के आदेश द्वारा वादों को संस्थित किए जाने या निगमित देनदार के विरुद्ध विधि के किसी न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम् पैनल या किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के निष्पादन को सम्मिलित करते हुए लम्बित वादों या कार्यवाहियों के चलते रहने, निगमित देनदार द्वारा उसकी किसी भी आस्ति या उसमें किसी विधिक अधिकार या हितकर लाभ को अन्तरित, धारित, हस्तांतरित या निस्तारित करने से, निगमित देनदार द्वारा उसकी किसी संपत्ति के संबंध में, 2002 के सरफेसी अधिनियम के अधीन किसी कार्रवाई को आगे सम्मिलित करते हुए, किसी संपत्ति के स्वामी या पट्टादाता द्वारा किसी संपत्ति का कब्जा प्राप्त किए जाने, जहां वह संपत्ति निगमित देनदार के अधिभोग में है या उसके कब्जे में है, सृजित किसी प्रतिभूति हित को प्रतिबंधित करने, वसूल करने या प्रवर्तित करने से संबंधित किसी कार्यवाही को प्रतिषिद्ध कर

दिया है । वर्तमान मामले में, यह दलील दी गई है कि ऋण वसूली अधिकरण आक्षेपित आदेश पारित करते हुए 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के भाग 3 में समाविष्ट उपबंधों, जो 1993 के अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी हैं, को अवेक्षित करने में विफल रहा । यह दलील भी दी गई है कि ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष सम्पूर्ण कार्यवाही संक्षिप्त रूप से इस पृष्ठभूमि में बिना किसी अधिकारिता के है कि जब कार्यवाही 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत पहले ही आरम्भ हो चुकी है और धारा 14 के अधीन ऋणस्थगन पहले ही जारी किया जा चुका है और उक्त कार्यवाहियों में भी पक्ष दिवाला वृत्तिक के समक्ष उपस्थित हो चुके हैं तो मुख्य देनदार के प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध आक्षेपित कार्यवाही दूषित है । श्री नवीन सिन्हा द्वारा दी गई दलील को इस आधार पर भी बल मिलता है कि यदि दायित्व अभी भी अनिर्णय की स्थिति में है और उसको निश्चित रूप नहीं दिया गया है, तो ऐसी स्थिति में विभिन्न अधिकारिता वाले प्राधिकारियों के समक्ष दो समानांतर/पृथक्-पृथक् कार्यवाहियों से यथासंभव बचा जाना चाहिए । ऊपर वर्णित परिस्थितियों में प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान् काउंसेल द्वारा अनुकल्पिक अनुतोष के संबंध में उठाए गए आक्षेपों को मान्य नहीं ठहराया जा सकता और अस्वीकृत किया जाता है । वे निर्णय जिनका अवलंब प्रत्यर्थी-बैंक की ओर में उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री सतीश चतुर्वेदी द्वारा लिया गया, विभेदनीय है और वे वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में आकर्षित नहीं होते, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है । इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि ऊपर वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों, जिनमें 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता और उसके अधीन विरचित विनियमों के अधीन उपबंधित बैंक को उपलब्ध पर्याप्त रक्षोपायों को ध्यान में रखते हुए और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि दायित्व को प्रमुख देनदार या प्रत्याभूतिदाताओं/बंधककर्ताओं के विरुद्ध अभी तक स्थिरीकृत नहीं किया गया है, तो वे कार्यवाहियां जो इलाहाबाद स्थित ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष लम्बित हैं, चल नहीं सकती और निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया को अंतिमता प्रदान किए जाने तक या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा धारा 31 की उपधारा (1) के अधीन समाधान योजना का अनुमोदन किए जाने तक या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा धारा 33 के अधीन निगमित देनदार का परिसमापन किए जाने का आदेश पारित किए जाने तक, जैसा भी मामला हो,

स्थगित की जाती हैं । पूर्वोक्त निर्देशों/मताभिव्यक्तियों के साथ दोनों रिट याचिकाएं निरस्तारित की जाती हैं । (पैरा 23, 24, 25, 29, 30, 31 और 32)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 4 एस. सी. सी. 1 : **मद्रास पैट्रोकेम लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **बोर्ड आफ इंडस्ट्रियल एण्ड फाइनेन्सियल रिकन्सट्रक्शन और अन्य ;**	17
[2016]	(2016) 4 एस. सी. सी. 47 : **पिगेसस एसेट्स रिकन्सट्रक्शन प्रा. लिमिटेड** बनाम **कोनकास्ट लिमिटेड और एक अन्य ;**	17
[2014]	2014 (3) एस. सी. 378 : **कमर्शियल टैक्स आफिसर, राजस्थान** बनाम **मैसर्स बिनानी सीमेंट लिमिटेड और एक अन्य ;**	17
[2010]	2010 लासूट (एस. सी.) 261 : **यूरेका फोर्ब्स लिमिटेड** बनाम **इलाहाबाद बैंक ;**	17
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1797 : **कर्नाटक फाइनेंशियल कारपोरेशन** बनाम **एन. नरसिम्हइय्याहा और अन्य ;**	14
[2003]	(2003) 4 एस. सी. सी. 305 : **कैलाश नाथ अग्रवाल और अन्य** बनाम **प्रादेशीय इंडस्ट्रियल एण्ड इन्वेस्टमेंट कारपोरेशन आफ यू. पी. लिमिटेड और एक अन्य ;**	17
[2000]	(2000) 4 एस. सी. सी. 406 : **इलाहाबाद बैंक** बनाम **केनरा बैंक और एक अन्य ;**	17
[1998]	(1998) 8 एस. सी. सी. 1 : **व्हिर्लपूल कारपोरेशन** बनाम **रजिस्ट्रार आफ ट्रेड मार्क्स, मुम्बई और अन्य ;**	14, 26
[1997]	ए. आई. आर. 1997 (2) एम. पी. एल. जे. 643 : **ओशी फूड्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक ;**	28

[1997] 1997 (2) एम. पी. एल. जे. 643 :
ओशी फूड्स लिमिटेड और एक अन्य बनाम **स्टेट बैंक आफ इंडिया ;** 14

[1997] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 1973 :
पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड बनाम **श्री विक्रम काटन मिल्स और एक अन्य ;** 14, 27

[1969] मनु/एस. सी. /0032/1969 :
पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड बनाम **श्री विक्रम काटन मिल्स और एक अन्य ;** 14

[1961] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 372 :
कलकत्ता डिस्काउंट कम्पनी लिमिटेड बनाम **इनकम टैक्स आफिसर, कम्पनी डिस्ट्रीट, I और एक अन्य ।** 14

रिट (सिविल) अधिकारिता : **2017 की रिट याचिका संख्या 30285 (साथ में 2017 की रिट याचिका संख्या 30033).**

याची की ओर से सर्वश्री आदित्य सिंह, नवीन सिन्हा और राहुल अग्रवाल और (2017 की रिट याचिका संख्या 30033 में) दिनेश कक्कड़

प्रत्यर्थी की ओर से अपर महासालिसीटर श्री आनन्दी कृष्ण नारायण, श्री सतीश चतुर्वेदी और साथ में श्री सिद्धार्थ, (2017 की रिट याचिका संख्या 30033 में) सर्वश्री सतीश चतुर्वेदी, आकाश चन्द्र मौर्य और रमेश कुमार शुक्ला

आदेश

2017 की रिट याचिका संख्या 30285 में याची की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा को सुना जिनकी सहायता श्री आदित्य सिंह, श्री राहुल अग्रवाल, श्री के. के. वाधवा, श्री अनुरुद्ध वाधवा, श्री आनन्दव हांडा और विपिन कुमार ने की और 2017 की संबद्ध रिट याचिका संख्या 30033 में श्री एम. एल. लाहुटी को सुना

जिनकी सहायता श्री दिनेश कक्कड़ और श्री आकाश चन्द्र मौर्य ने की और प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सतीश चतुर्वेदी और श्री सिद्धार्थ को सुना ।

2. दोनों ही रिट याचिकाओं के याचियों ने इलाहाबाद के ऋण वसूली अधिकरण द्वारा 2017 के मूल आवेदन संख्या 238 (स्टेट बैंक इंडिया बनाम एल. एम. एल. लि. और अन्य) में तारीख 6 जुलाई 2017 को पारित आदेश को चुनौती दी है ।

3. याचियों के अनुसार दोनों ही रिट याचिकाओं के संक्षेप में तथ्य ये हैं कि याची कानपुर स्थित मैसर्स एल. एम. एल. लिमिटेड, जिसको औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड द्वारा तारीख 8 मई, 2007 के आदेश द्वारा "रुग्ण औद्योगिक कम्पनी" घोषित किया जा चुका है, के प्रत्याभूतिदाता हैं । भारतीय स्टेट बैंक ने इलाहाबाद स्थित ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष 1993 के बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन मुख्य ऋणी कम्पनी (प्रत्यर्थी संख्या 1 परिसमापन का सामना कर रही है) और प्रत्याभूतिदाताओं श्री दीपक सिंघानिया, श्री संजीव श्रिया और श्री अनुराग कुमार सिंघानिया, के विरुद्ध 72,75,29,053/- रुपए की वसूली के लिए 2017 का मूल आवेदन संख्या 238 निम्नलिखित अनुतोषों की ईप्सा करते हुए फाइल किया :-

"(क) यह कि सभी प्रतिवादियों संख्या 1 से 4 के विरुद्ध आवेदक को संयुक्त और पृथक्-पृथक् रूप से 72,75,29,053.71 रुपए की राशि का तारीख 28 मार्च, 2017 से वार्षिक चक्रवृत्ति के आधार पर 6.5 प्रतिशत औसत वार्षिक आय वाले ब्याज सहित संदाय करने के लिए वसूली प्रमाणपत्र जारी किया जाए जब तक कि आवेदक द्वारा आवेदन फाइल किए जाने की तारीख से संदाय/वसूली तक उक्त आडमानित माल और यथापूर्वोक्त बंधक अचल संपत्तियों और उनके ऊपर यथापूर्वोक्त ब्याज के संबंध में समस्त लागत, प्रभार और खर्च और इस आवेदन की लागत के संबंध में वास्तविक रूप से वसूली न हो जाए ।

(ख) यह कि यह माननीय न्यायालय आवेदन की प्रार्थना (क) में उल्लिखित रकम के समाधान के लिए आवेदन के पैरा (5.5) में वर्णित आडमानित आस्तियों और साम्यापूर्ण रूप से बंधक सम्पत्ति के विक्रय और शुद्ध विक्रय आगमों के समायोजन के लिए आदेश पारित करें ।

(ग) यह कि पूर्वोक्त अचल संपत्तियों से अभिप्राप्त शुद्ध विक्रय आगमों के प्रार्थना (क) में उल्लिखित रकमों को आछांदित करने में अपर्याप्त पाए जाने की स्थिति में बकाया रकम की वसूली प्रतिवादी संख्या 2 से 4 की निजी चल और अचल संपत्तियों से प्राप्त विक्रय आगमों से की जाए ।

(घ) यह कि ऐसा अग्रिम और अन्य अनुतोष भी आवेदक को प्रदान किया जाए, जैसा कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपेक्षित हो और यह माननीय न्यायालय उचित प्रतीत करे ।"

4. मामला 2017 के अन्तवर्ती आवेदन संख्या 1013 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । याचियों, जिनको ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष प्रतिवादी संख्या 2 से 4 के रूप में संख्यांकित किया गया, ने ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को स्थगित किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन प्रस्तुत किया । ऋण वसूली अधिकरण ने दोनों पक्षों को तारीख 6 जुलाई, 2017 को सुना और इलाहाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा तारीख 30 मई, 2017 को कम्पनी पिटीशन संख्या आई. बी. (55) इलाहाबाद/2017 में पारित आदेश के आधार पर प्रथम प्रत्यर्थी अर्थात् मैसर्स एल. एम. एल. लिमिटेड, जो कि एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी/ऋणी है, के विरुद्ध लम्बित कार्यवाही को स्थगित करते हुए 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन लंबित विधिक कार्यवाहियों पर ऋणस्थगन अधिरोपित कर दिया और याचियों को निर्देशित किया कि वे शपथपत्र पर स्थायी आप्रवास या वीजा या यात्रा अनुमति के लिए लम्बित आवेदनों के विवरण, उनके द्वारा भारत या विदेशों में अनन्य रूप से या भागीदारी में किए जाने वाले कारबार के विवरण, बैंक खातों में जमा को सम्मिलित करते हुए उनकी चल और अचल आस्तियों के समस्त विवरण विदेश मंत्रालय के प्राधिकारियों को दें और उनको लिखित कथन फाइल करने के लिए भी निदेशित किया गया । ऋण वसूली अधिकरण द्वारा तारीख 6 जुलाई, 2017 को पारित आदेश निम्नलिखित है :–

"आवेदक बैंक की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एस. के. श्रीवास्तव उपस्थित हैं । प्रतिवादियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री दिनेश कक्कड़ उपस्थित हैं । बैंक के काउंसेल ने निवेदन किया कि वे विधिक विवाद्यकों पर बहस करने के अपने अधिकार पर कोई

विपरीत प्रभाव पड़े बिना अंतर्वती आवेदन संख्या 1013/17 के विरुद्ध कोई उत्तर फाइल नहीं करना चाहते । पक्षों की सहमति से अंतर्वती आवेदन संख्या 1013/17 को सुना गया ।

बैंक के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत किया गया आदेश केवल प्रतिवादी संख्या 1 पर बाध्यकारी हैं और बैंक को प्रत्याभूतिदाताओं और उनकी निजी संपत्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का पूर्ण अधिकार है और इसलिए राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा तारीख 30 मई, 2017 को पारित आदेश के प्रकाश में भी कार्यवाहियां स्थगित नहीं की जा सकती ।

प्रतिवादियों के काउंसेल ने उक्त दलीलों का खंडन किया और 2016 के दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि यह संहिता 1993 के बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋणों की वसूली अधिनियम पर अध्यारोही प्रभाव रखती है और आगे निवेदन किया कि चूंकि यह एक पश्चात्वर्ती संहिता है, इसलिए अन्यथा रूप से भी 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध 1993 के अधिनियम पर अभिभावी होंगे । प्रतिवादियों की ओर से यह दलील दी गई की यदि लेनदार पुनर्गठन को अंगीकृत करने में असफल रहे तो कम्पनी को मुकदमेंबाजी का सामना करना पड़ेगा और बैंक अपने देयों की वसूली राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के आदेशानुसार करेगा ।

उन्होंने आगे निवेदन किया कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 231 के अनुसार सिविल न्यायालय की अधिकारिता राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित मामलों के संबंध में बाधित है ।

उन्होंने आगे धारा 14 के परन्तुक को निर्दिष्ट किया जो पुनर्गठन के उपबंध के लिए उपबंधित करता है और इस परन्तुक को दृष्टि में रखते हुए बैंक का मूल आवेदन स्थगित किए जाने योग्य है ।

उन्होंने आगे दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 3(10) और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता में लेनदार की परिभाषा को निर्दिष्ट किया और निवेदन किया कि उक्त उपबंधों में बैंक लेनदार की परिभाषा की परिधि के अन्तर्गत आता है ।

आरम्भिकतः, इस अधिकरण का यह कहना है कि 1993 का

बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋणों की वसूली अधिनियम के अन्तर्गत गठित ऋण वसूली अधिकरण सिविल न्यायालय नहीं है इसलिए दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 231 के उपबंध लागू नहीं होंगे और इस संबंध में दी गई दलील भ्रामक है ।

वास्तव में, प्रतिवादी माननीय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा पारित तारीख 30 मई, 2017 के आदेश का आश्रय लेने के द्वारा ऋणी और प्रत्याभूतिदाता दोनों के विरुद्ध बैंक द्वारा एक साथ आरम्भ की गई कार्यवाही को रोकने का आशय रखते हैं, और जैसी कि दलील प्रतिवादियों द्वारा दी गई है कि यदि लेनदार पुनर्गठन को अंगीकृत करने में विफल हो जाते हैं तो कम्पनी परिसमापन का सामना करेगी और बैंक अपने देयों की वसूली राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के आदेशों के अनुसार करेगी ।

मैंने इस मामले में विवाद्यक पर गंभीरतापूर्वक विचार किया । इस मामले में आवेदक बैंक ने 1993 के बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋणों की वसूली अधिनियम की धारा 19 के अधीन 72,75,29,053.71 रुपए (बहत्तर करोड़ पच्चतर लाख उन्नतिस हजार तिरपन रुपए और इकहत्तर पैसे) की वसूली के लिए तारीख 27 मार्च, 2017 को आवेदन फाइल किया और इस अधिकरण के निर्देशानुसार तारीख 26 अप्रैल, 2017 को रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा समन तामीली की कार्यवाही की गई । प्रतिवादियों ने इस प्रकार से भेजे गए समन प्राप्त किए और वे तारीख 15 मई, 2017 अर्थात् निर्धारित तारीख पर अधिकरण के समक्ष उपस्थित हो गए और तत्पश्चात् बैंक ने उनको मूल आवेदन की प्रति उपलब्ध करा दी और प्रतिवादियों ने लिखित कथन फाइल करने के लिए स्थगन मांगे और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए प्रतिवादियों को लिखित कथन फाइल करने के लिए 30 दिनों का समय प्रदान किया गया । इसके अलावा, इस अधिकरण ने तारीख 19 मई, 2017 के आदेश में पक्षों को इस बाबत स्पष्टतया मताभिव्यक्ति करते हुए सलाह दी है कि यह एक उच्च मूल्यांकन वाला मामला है और यह प्रत्याशा की जाती है कि इस मुकदमे के पक्षकार दिन-प्रतिदिन सुनवाई में इस अधिकरण की सहायता करेंगे ।

प्रतिवादियों ने उत्तर फाइल करने के बजाय कतिपय बैंकों द्वारा वसूली कार्यवाही आरम्भ किए जाने के पश्चात् 2016 की दिवाला

और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन याचिका फाइल की ।

इस प्रक्रम पर प्रतिवादी संख्या 1 से 4 के काउंसेल ने मध्यक्षेप किया और अभिकथित किया कि बैंक की सहायक महाप्रबंधक सुश्री सुजाता चन्द्रा तारीख 30 मई, 2017 को राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष उपस्थित थी और आदेश उनकी उपस्थिति में पारित किया गया था ।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी संख्या 1 ने राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष वर्तमान कार्यवाहियों को विफल करने या उनको विलम्बित करने के प्रयोजनार्थ शरण ली, किन्तु यह अधिकरण कानून के उपबंधों द्वारा बाध्य है, किन्तु यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी ने उक्त अधिनियम के उपबंधों का लाभ लेते हुए वसूली कार्यवाहियों को विलम्बित किए जाने के प्रयोजनार्थ माननीय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष याचिका फाइल करने का विकल्प चुना है । मैं प्रतिवादियों द्वारा दी गई दलीलों से सहमत हूं कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध 1993 के बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋणों की वसूली अधिनियम पर अभिभावी होंगे । किन्तु जहां तक निगमित अस्तित्व का संबंध है, अन्य प्रतिवादियों के विरुद्ध, माननीय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा व्यक्तिगत प्रतिभूतिदाताओं/बंधककर्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही को आगे बढ़ाए जाने के प्रयोजनार्थ न तो कोई विनिर्दिष्ट आदेश पारित किया गया और न ही कोई निर्बंधन ही अधिरोपित किया गया है । प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल ने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के विभिन्न उपबंधों को निर्दिष्ट किया है, किन्तु वे उपबंध केवल कम्पनी से ही संबंधित हैं । प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल ऐसा कोई भी उपबंध उद्धृत या दर्शित नहीं कर सके जो व्यक्तिगत प्रतिभूतिदाताओं/बंधककर्ताओं के विरुद्ध आरम्भ की गई कार्यवाही को रोके जाने के लिए उपबंधित करता हो ।

मेरी सुविचारित राय यह है कि तारीख 30 मई, 2017 को माननीय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा पारित आदेश मात्र प्रतिवादी संख्या 1, जो एक निगमित अस्तित्व है, के विरुद्ध कार्यवाही है और व्यक्तिगत प्रतिभूतिदाताओं/बंधककर्ताओं, जिन्होंने अपनी व्यक्तिगत प्रत्याभूति दी और अपनी निजी प्रतिभूतियां प्रस्तावित की, के विरुद्ध कार्यवाहियों को निषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई आदेश पारित नहीं किया गया है और उनके विरुद्ध वर्तमान

कार्यवाहियां जारी रह सकती हैं । अन्तरिम प्रार्थनापत्र में आवेदक बैंक ने यह प्रार्थना की है कि प्रतिवादी संख्या 2 से 4 को आडमान किए गए माल और बंधक की गई सम्पत्तियों को अन्तरित करने, हस्तांतरित करने या अन्यथा रूप से उनके संबंध में संव्यवहार करने से निषिद्ध कर दिया जाए, ताकि इस दौरान मैं प्रतिवादी संख्या 2 से 4 को निम्नलिखित सूचना का प्रकटीकरण करने के लिए निर्देशित किया जा सके :–

(i) स्थायी आप्रवास या वीजा या यात्रा अनुज्ञा के लम्बित आवेदनों के विवरण विदेश मंत्रालय के प्राधिकारियों को दिए जाएं ।

(ii) विदेशों और भारत में स्थित संपत्तियों के विवरण दिए जाएं ।

(iii) विदेशों और भारत में अनन्य रूप से या भागीदारी के अधीन चल रहे कारबार के विवरण दिए जाएं ।

(iv) बैंक खातों को सम्मिलित करते हुए उनकी चल और अचल संपत्तियों के विवरण शपथपत्र पर दिए जाएं ।

(v) इसके अतिरिक्त, प्रतिवादियों को निर्देशित किया जाता है कि वे अपने आधार कार्डों की प्रतियां प्रस्तुत करें ।

इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी संख्या 2 से 4 को निर्देशित किया जाता है कि वे अपना लिखित उत्तर 7 दिनों के भीतर फाइल करें जिसमें विफल रहने पर उनको 50,000/- रुपए की लागत का संदाय करना पड़ेगा चूंकि यह एक उच्च मूल्यांकन वाला मामला है और इस अधिकरण ने पक्षों को पहले ही सलाह दे दी है कि मामला दिन-प्रतिदिन के आधार पर सुना जाएगा ।

प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध कार्यवाही माननीय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा अग्रिम आदेश पारित किए जाने तक स्थगित रहेगी ।

मामले को तारीख 13 जुलाई, 2017 को आगे की कार्यवाही के लिए सूचीबद्ध किया जाए ।"

5. याची कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के निदेशक

हैं और उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ तारीख 28 मार्च, 2005 को एक प्रत्याभूति विलेख भी प्रथम प्रत्यर्थी के पक्ष में निष्पादित किया जिसके मतावलम्बन में तारीख 28 मार्च, 2005 को एक बहुपक्षीय करार निष्पादित किया गया । याची अधिकरण के समक्ष आक्षेपित कार्यवाहियों में प्रतिवादी संख्या 2 से 4 थे । यह प्रकथन भी किया गया है कि याची कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के दिन-प्रतिदिन के क्रियान्वयन में सक्रिय रूप से अन्तर्वलित थे । प्रथम प्रत्यर्थी ने इलाहाबाद के ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष 1993 के अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही यह दावा करते हुए आरम्भ की कि द्वितीय प्रत्यर्थी तारीख 28 मार्च, 2005 के बहुपक्षीय करार का पालन करने में विफल रहा है और उसने भारतीय स्टेट बैंक को शोध्य संदायों जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, में चूक कारित की है, जो 2017 का मूल आवेदन संख्या 238 है (**भारतीय स्टेट बैंक** बनाम **एल. एम. एल. लिमिटेड और अन्य**) । उक्त कार्यवाही में ऋण वसूली अधिकरण द्वारा तारीख 30 मार्च, 2017 को एक अन्तरिम आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा प्रतिवादियों से यह अपेक्षा की गई कि वे प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा विनिर्दिष्ट विवरणों/सम्पत्तियों/आस्तियों का प्रकटीकरण करें । पूर्वोक्त कार्यवाही में भारतीय स्टेट बैंक द्वारा यह प्रार्थना भी की गई कि प्रतिवादियों को कार्यवाही के विचाराणार्थ लम्बन के दौरान सम्पत्तियों/आस्तियों के निस्तारण से निषिद्ध किया जाए ।

6. इसी दौरान, मैसर्स एल. एम. एल. लिमिटेड ने 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन कम्पनी याचिका फाइल करते हुए इलाहाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण की शरण ली और 2017 की कम्पनी याचिका संख्या आई. बी. (55) /इलाहाबाद (एल. एम. एल. लिमिटेड वाले मामले में) फाइल की और 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के निबंधनों के अनुसार कापोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया के बाबत सूचित किए जाने की ईप्सा की और 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 13 के निबंधनों के अनुसार निम्नलिखित अनुतोषों का दावा किया :–

> "(1) निगमित आवेदक कम्पनी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को विचारणार्थ ग्रहण किया जाए और 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ आदेश पारित किया जाए ।

(2) निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया की सार्वजनिक रूप से उद्घोषणा की जाए और संहिता की धारा 15 के अधीन दावे प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा की जाए, और

(3) 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के निबंधनों के अनुसार ऋणस्थगन की घोषणा की जाए ।"

7. उक्त कार्यवाही में प्रश्नगत कम्पनी याचिका में राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा तारीख 30 मई, 2017 को एक आदेश पारित किया गया । उक्त आदेश के सुसंगत भाग निम्नलिखित हैं :–

"(6) मामले की ऊपर वर्णित तथ्यात्मक और विधिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि निगमित देनदार ने संहिता की धारा 10 की अपेक्षा का अनुपालन कर दिया है । उपरोक्त को दृष्टि में रखते हुए, वर्तमान आवेदन स्वीकार किए जाने योग्य है, अतः स्वीकार किया जाता है । हम ऋणस्थगन की घोषणा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल की गई याचिका को विचारणार्थ ग्रहण करते हैं, जो इस प्रकार है –

(i) धारा 14 के अधीन ऋणस्थगन का आदेश तारीख 30 मई, 2017 से निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया की समाप्ति तक या जब यह न्यायपीठ धारा 31 की उपधारा (1) के अधीन समाधान योजना का अनुमोदन कर दें या धारा 33 के अधीन निगमित लेनदार के परिसमापन का आदेश पारित कर दे, जैसा भी मामला हो, तक प्रभावी होगा ।

(ii) यह न्यायपीठ एतद्द्वारा निगमित देनदारों के विरुद्ध किसी निर्णय, डिक्री या विधि के किसी न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम् पेनल या अन्य प्राधिकारी पारित आदेश को निष्पादित किए जाने, निगमित देनदार द्वारा उसकी किसी भी आस्ति या उस आस्ति में किसी विधिक अधिकार या लाभदायक हित को अन्तरित किए जाने, धारित किए जाने, हस्तांतरित किए जाने या निस्तारित किए जाने, उसकी किसी भी सम्पत्ति के संबंध में सृजित किसी प्रतिभूत हित का मोचन किए जाने, वसूली किए जाने या प्रवर्तन किए जाने के संबंध में किसी कार्यवाही, 2002 के सरफेसी अधिनियम के अन्तर्गत किसी कार्यवाही, किसी संपत्ति के स्वामी या पट्टेदार द्वारा उस संपति की वसूली, जहां वह संपत्ति निगमित देनदार के अधिभोग में है या उसके

कब्जे में है, को सम्मिलित करते हुए वादों को संस्थित किए जाने या लम्बित वादों या कार्यवाही को जारी रखे जाने को प्रतिषिद्ध करती है ।

(iii) ऋणस्थगन अवधि के दौरान निगमित देनदार को आवश्यक माल या सेवाओं की आपूर्ति, यदि जारी है, समाप्त या निलम्बित या बाधित नहीं की जाएगी ।

(iv) धारा 14 की उपधारा (1) के उपबंध ऐसे संव्यवहारों के संबंध में लागू नहीं होंगे जिनको केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्तीय सेक्टर के विनियामक से विचार-विमर्श करते हुए अधिसूचित कर दिया गया है ।

(v) यह न्यायपीठ एतद्द्वारा श्री अनिल गोयल को अन्तरिम समाधान वृत्तिक के रूप में 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत वर्णित कार्यों को करने के लिए नियुक्त करती है जिनकी रजिस्ट्रीकरण संख्या आई. बी. बी. आई. /1 पी. ए.-001/आई. पी.-00020-2016-2017/1623 है और पता ए. ए. ए. इन्सालवेंसी प्रोफेशनल एल. एल. पी., ई-10ए, कैलाश कालोनी, नई दिल्ली-110048 है ।

(vi) निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया की सार्वजनिक उद्घोषणा तुरन्त की जानी चाहिए, जैसा कि संहिता की धारा 13 में विनिर्दिष्ट है और संहिता की धारा 15 के अधीन दावों को प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा की जानी चाहिए ।

(vii) आवश्यक औपचारिकताओं को पूर्ण किए जाने के पश्चात् अन्तरिम समाधान वृत्तिक समेत सभी पक्षों को आदेश की प्रमाणित प्रति जारी की जाए ।

पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए यह आवेदन स्वीकार किया जाता है और तद्नुसार निरस्तारित किया जाता है ।"

8. तत्पश्चात्, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा नियुक्त दिवाला वृत्तिक ने तारीख 2 जून, 2017 को सार्वजनिक उद्घोषणा जारी की जिसके द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के लेनदारों से दावे आमंत्रित किए गए जिनको तारीख 13 जून, 2017 तक प्रस्तुत किया जाना था । यह सार्वजनिक उद्घोषणा समाचारपत्रों "फाइनेंशियल एक्सप्रेस" और "अमर उजाला" में भी प्रकाशित

की गई । इसकी सूचना बोम्बे स्टाक एक्सचेंज और नेशनल स्टाक एक्सचेंज को भी दी गई । दिवाला वृत्तिक ने कम्पनी के लेनदारों की बैठक के लिए अन्य बातों के साथ-साथ प्रथम प्रत्यर्थी के लेनदारों की समिति की बैठक की कार्यसूची संलग्न करते हुए नोटिस भी जारी किया । कार्यसूची के साथ उक्त नोटिस प्रथम प्रत्यर्थी को भी भेजी गई थी । यहां पर यह उपदर्शित किया जाना सुसंगत होगा कि उक्त नोटिस में दिवाला वृत्तिक ने स्वीकार किया था कि द्वितीय प्रत्यर्थी के विभिन्न लेनदारों से लगभग 1000 दावे प्राप्त हुए हैं । यहां तक कि प्रथम प्रत्यर्थी ने भी दिवाला वृत्तिक के समक्ष दावा फाइल किया और उसने उक्त बैठक, जो तारीख 29 जून, 2017 को सम्पन्न हुई थी, में भाग भी लिया था । ऋण वसूली अधिकरण ने 2017 के अन्तर्वर्ती आवेदन संख्या 1013 में तारीख 29 जून, 2017 को नोटिस जारी किया और तारीख 6 जुलाई, 2017 को आक्षेपित आदेश पारित किया जिसके द्वारा प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाही को स्थगित कर दिया गया किन्तु साथ ही साथ उन याचियों के विरुद्ध, जो प्रत्याभूतिदाता थे, कार्यवाही आगे अग्रसर हुई ।

9. इस पृष्ठभूमि में 2017 की रिट याचिका संख्या 30285 में याचियों की ओर से उपस्थित ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा, जिनकी सहायता सुश्री आनन्दवा हांडा ने की, ने निवेदन किया कि इस रिट याचिका में इस संबंध में विधि के सारभूत प्रश्न उद्‌भूत हुए हैं कि क्या भारतीय स्टेट बैंक को 1993 के अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन याचियों, जो प्रत्याभूतिदाता हैं, के विरुद्ध इलाहाबाद स्थित ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष (परिसमापन का सामना करने वाली) कम्पनी द्वारा लिए गए ऋण की रकम की वसूली के लिए कार्यवाही का अनुसरण करने की अनुज्ञा प्रदान की जा सकती है । जब राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने पहले ही 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन ऋणस्थगन जारी कर दिया है और (परिसमापन का सामना करने वाली) कम्पनी के संबंध में कार्यवाही को स्थगित कर दिया है, ऋण वसूली अधिकरण 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के भाग 3 को ध्यान में रखने में विफल रहा है और 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध 1993 के अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी होंगे । चूंकि याची (परिसमापन का सामना करने वाली) कम्पनी का निदेशक है, वह राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा (परिसमापन का सामना करने वाली) कम्पनी के लिए 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन नियुक्त

समाधान वृत्तिक को सहायता प्रदान करने के लिए बाध्य है । उन्होंने यह निवेदन भी किया कि ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष सम्पूर्ण कार्यवाही संक्षेप में इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए बिना किसी अधिकारिता के है कि जब कार्यवाही 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन पहले ही आरम्भ हो चुकी है और 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन ऋणस्थगन पहले ही जारी किया जा चुका है और यहां तक कि पक्ष दिवाला वृत्तिक के समक्ष उपस्थित हो चुके हैं, तो केवल किसी मुख्य देनदार के प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध आक्षेपित कार्यवाही दूषित हैं, विशेष रूप से वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए जहां 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के क्रियान्वयन द्वारा मुख्य देनदार के विरुद्ध विधिक वर्जन/ऋणस्थगन प्रभावी है । राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने पहले ही (परिसमापन का सामना करने वाली) कम्पनी के विरुद्ध दिवाला समाधान की प्रक्रिया को रोक दिया है । इसके अलावा, भारतीय स्टेट बैंक उक्त कार्यवाही में अपने दावे के संबंध में उपस्थित हो चुकी है और ऋण वसूली अधिकरण किसी भी दृष्टिकोण से द्वितीय प्रत्यर्थी के अभिकथित ऋण के किसी भी दावे का न्यायनिर्णयन नहीं कर सकता और ऋण के विनिर्धारण के बिना ऋण वसूली अधिकरण प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकता । भारतीय स्टेट बैंक ने किसी भी समयबिन्दु पर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही से स्वयं को असहबद्ध नहीं किया है बल्कि वह सक्रिय रूप से कार्यवाही में भाग ले रहा है ।

10. ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा ने यह निवेदन किया कि ऋण वसूली अधिकरण द्वारा आरम्भ की गई सम्पूर्ण कार्रवाई 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, जिसको निगमित व्यक्तित्व, भागीदारी फर्मों और निजी व्यक्तियों के पुनर्गठन और दिवाला समाधान को एक समयबद्ध रीति में उनकी आस्तियों के मूल्य को अधिकतम सीमा तक बढ़ाए जाने, उद्यमिता को प्रोन्नत किए जाने, ऋण की उपलब्धता, सरकारी देयों के संदाय में प्राथमिकता के क्रम में फेरफार को सम्मिलित करते हुए समस्त अंशधारियों के हितों को संतुलित किए जाने और भारत का दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड स्थापित किए जाने और उनसे संबंधित या उनके आनुषांगिक मामलों के प्रयोजनार्थ संबंधित विधियों को समेकित और संशोधित किए जाने के लिए अधिनियमित किया गया है । उन्होंने धारा 2(ङ), 3(2), 3(7), 3(8), 3(11), 3(12), 5(8) के अधीन समाविष्ट

उपबंधों पर अत्यधिक जोर दिया है और उक्त उपबंधों के आधार पर यह निवेदन करने का प्रयास किया कि ये उपबंध प्रत्याभूतिदाता के मामलें में भी आकर्षित होंगे ।

11. उन्होंने निवेदन किया कि 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अध्याय 2 (निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया) की धारा 6 ऐसे व्यक्तियों से संबंधित है जो निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ कर सकते हैं । धारा 7 वित्तीय लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने पर विचार करती है और धारा 8 कारोबारी लेनदार द्वारा दिवाला समाधान पर विचार करती है । धारा 10 निगमित आवेदक द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने पर विचार करती है । धारा 12 दिवाला समाधान प्रक्रिया की समाप्ति के लिए समय सीमा से संबंधित है । धारा 14 ऋणस्थगन से संबंधित है और उपबंधित करती है कि दिवाला के आरम्भ होने की तारीख पर न्यायनिर्णायक प्राधिकारी आदेश द्वारा निम्नलिखित सभी अर्थात वादों को संस्थित किए जाने या लम्बित वादों या विधि के न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम् पैनल या किसी अन्य प्राधिकारी के न्यायालय में किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के निष्पादन को सम्मिलित करते हुए निगमित देनदारों के विरुद्ध कार्यवाहियों को जारी रखे जाने को प्रतिषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ ऋणस्थगन की घोषणा करेगा ।

12. उन्होंने इस पृष्ठभूमि में यह निवेदन किया कि जहां तक भारतीय स्टेट बैंक और अन्य लेनदारों का संबंध है, उनके हित संरक्षित हैं और संपत्ति हस्तांतरित नहीं की जा सकती । उन्होंने धारा 30 का अवलंब लिया जो उस तरीके को उपबंधित करती है जिसमें समाधान की ईप्सा करने वाले किसी आवेदक द्वारा समाधान योजना प्रस्तुत की जा सकती है । इस बात पर कोई निर्बंधन नहीं है कि समस्त लागू विधियों के अनुपालन के अध्यधीन रहते हुए समाधान आवेदक कौन हो सकता है । इसमें निगमित देनदार के प्रवर्तक भी सम्मिलित हो सकते हैं । ये उपबंध वाणिज्यिक रूप से व्यवहार्य किन्तु दिवाला कारबार प्रस्तावों में हितबद्ध लोगों के प्रस्तावों को सुकर बनाता है जिससे कि इस प्रक्रिया में समस्त अंशधारियों के लिए ऐसे अस्तित्वों को मूल्यवान बनाया जा सके । समाधान वृत्तिक ऐसी प्रत्येक समाधान योजना को प्रस्तुत करेगा जिसकी पुष्टि लेनदारों की समिति धारा 30(2) के खंड (क) से (च) के अधीन उपबंधित श्रेणियों के आधार पर करती हो, जिसका अनुमोदन लेनदारों की समिति द्वारा समाधान योजना के 75 प्रतिशत मताधिकार भाग द्वारा किया गया हो । इसके पश्चात् ही

समाधान वृत्तिक 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 30(6) के अधीन समाविष्ट उपबंधों के अनुसार न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के समक्ष लेनदारों की समिति द्वारा अनुमोदित समाधान योजना प्रस्तुत कर सकता है । धारा 31 समाधान योजना के अनुमोदन पर विचार करती है और उपबंधित करती है कि यदि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी इस बाबत संतुष्ट है कि धारा 30 उन अपेक्षाओं को पूरा करती है जो धारा 30 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट है, तो वह आदेश द्वारा समाधान योजना का अनुमोदन कर सकता है, जो निगमित देनदार और उसके कर्मचारियों, सदस्यों, लेनदारों, प्रत्याभूतिदाताओं और समाधान योजना में अन्तर्वलित अन्य अंशधारियों पर बाध्यकारी होगा । लेनदारों के पक्ष में पर्याप्त रक्षोपाय उपबंधित किए गए हैं । यहां तक कि धारा 31(2) उपबंधित करती है कि जहां न्यायनिर्णायक प्राधिकारी इस बाबत संतुष्ट है कि समाधान योजना उपधारा (1) में निर्दिष्ट अपेक्षाओं की पुष्टि नहीं करती तो वह आदेश द्वारा समाधान योजना को अस्वीकृत कर सकता है ।

13. ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा ने न्यायालय को इस बात से भी अवगत कराया कि अध्याय 6 की धारा 60 निगमित व्यक्तित्वों के प्रयोजनार्थ न्यायनिर्णायक प्राधिकारी से संबंधित है । धारा 60(1) उपबंधित करती है कि निगमित देनदारों और उनके व्यक्तिगत प्रत्याभूतिदाताओं को सम्मिलित करते हुए निगमित व्यक्तियों के लिए दिवाला समाधान और परिसमापन के संबंध में न्यायनिर्णायक प्राधिकारी राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण होगा जिसको उस स्थान के संबंध में क्षेत्रीय अधिकारिता प्राप्त होगी जहां निगमित व्यक्तित्व का रजिस्ट्रीकृत कार्यालय स्थित है । 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत निगमित देनदारों के विरुद्ध अत्यधिक भय दिखाकर निवारण की स्थिति उपबंधित की गई है और यहां तक कि ऋणस्थगन या समाधान योजना के अतिलंघन के लिए दंड भी 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 74 में उपबंधित किया गया है । उन्होंने 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के विधायी उपबंधों पर दृष्टि डालते हुए पक्षों के क्रमबंधन का अवलंब लिया, जो इलाहाबाद के ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष प्रश्नगत मूल आवेदन, जिसमें पब्लिक लिमिटेड कम्पनी (ऋणी) मैसर्स एल. एम. एल. लिमिटेड को भारतीय स्टेट बैंक द्वारा प्रथम प्रत्यर्थी के रूप में ; श्री संजीव श्रिया (2017 की रिट याचिका संख्या 30285 में याची) को तृतीय प्रत्यर्थी (निदेशक/प्रत्याभूतिदाता) के रूप में और श्री दीपक सिंघानिया और श्री अनुराग कुमार सिंघानिया (2017 की संबद्ध रिट याचिका

संख्या 30033 में याची) को द्वितीय और चतुर्थ प्रत्यर्थियों के रूप में संख्यांकित किया गया है ।

14. उन्होंने निवेदन किया कि ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष प्रथम अनुतोष की ईप्सा सभी प्रतिवादियों के विरुद्ध वसूली प्रमाणपत्र जारी किए जाने की बाबत की गई है जिसके अन्तर्गत वे संयुक्त अथवा पृथक् रूप से भारतीय स्टेट बैंक को 72,75,29,053.71 रुपए का संदाय करें और तृतीय अनुतोष की ईप्सा इस बाबत की गई है कि ऊपर वर्णित अचल संपत्तियों से प्राप्त विक्रय आगमों के अनुतोष (क) में उल्लिखित रकम को आच्छादित किए जाने के प्रयोजनार्थ अपर्याप्त पाए जाने की स्थिति में अधिशेष रकम प्रतिवादी संख्या 2 से 4 की व्यक्तिगत चल और अचल संपत्तियों के विक्रय से वसूल की जाए । यदि एक बार के अन्तर्गत फाइल किया गया आवेदन विचारणार्थ लम्बित हो जाता है, तो उस आवेदन में उल्लिखित रकम विशेषित हो जाएगी और इसके अतिरिक्त कम्पनी विधि अधिकरण में प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाही पहले ही स्थगित की जा चुकी है, तो किसी भी प्रकार से यह धारणा नहीं की जा सकती कि दायित्व प्रत्याभूतिदाताओं पर अधिरोपित किया जा सकता है और मामले में किसी अंतिम अनुतोष को प्रदान किए जाने की आवश्यकता नहीं है । सम्पूर्ण कार्यवाही निरर्थक और शून्य है और इसलिए इस न्यायालय को याचियों के बचाव और दंडस्थगन के लिए आगे नहीं आना चाहिए अन्यथा याचियों को अपूर्णनीय हानि और क्षति का सामना करना पड़ेगा । उन्होंने अपने निवेदन के समर्थन में **कलकत्ता डिस्काउंट कम्पनी लिमिटेड** बनाम **इनकम टैक्स आफिसर, कम्पनी डिस्ट्रिक्ट, I और एक अन्य**[1], **पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड** बनाम **श्री विक्रम काटन मिल्स और एक अन्य**[2], **पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड** बनाम **श्री विक्रम काटन मिल्स और एक अन्य**[3], **ओशी फूड्स लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **स्टेट बैंक आफ इंडिया**[4], **कर्नाटक फाइनेंशियल कारपोरेशन** बनाम **एन. नरसिम्हइय्याहा और अन्य**[5] और **व्हिर्लपूल कारपोरेशन** बनाम **रजिस्ट्रार आफ ट्रेड मार्क्स, मुम्बई और अन्य**[6] वाले

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 372.
[2] मनु/एस. सी. /0032/1969.
[3] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 1973.
[4] 1997 (2) एम. पी. एल. जे. 643.
[5] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1797.
[6] (1998) 8 एस. सी. सी. 1.

मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया ।

15. सहबद्ध रिट याचिका में याचियों की ओर से उपस्थित श्री एम. एल. लाहुटी, जिनकी सहायता श्री दिनेश कक्कड़ ने की, ने दृढ़तापूर्वक दलील दी कि विद्वान् ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 6 जुलाई, 2017 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए कतिपय मताभिव्यक्तियां की हैं कि प्रत्यर्थी जानबूझकर 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों का लाभ लेकर वर्तमान कार्यवाहियों को विफल करने या विलम्बित करने के लिए मात्र इस प्रयोजनार्थ राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण की शरण में चले गए हैं कि प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों ने राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष वर्तमान याचिका फाइल करने के विकल्प को चुन लिया है । इस प्रक्रम पर इस प्रकार का मत व्यक्त किया जाना अनपेक्षित था । उन्होंने आगे निवेदन किया कि यद्यपि विद्वान् ऋण वसूली अधिकरण का मत यह था कि जहां तक निगमित अस्तित्व का संबंध है, 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता 1993 के अधिनियम पर अभिभावी होगी, किन्तु इसके विपरीत वह अन्य प्रत्याभूतिदाताओं/प्रतिवादियों के विरुद्ध अग्रसर हो गए । विद्वान् ऋण वसूली अधिकरण ने राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा पारित आदेश का निर्वचन करने में कि राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा न तो कोई विनिर्दिष्ट आदेश पारित किया गया है और न ही उक्त न्यायालय द्वारा व्यक्तिगत प्रत्याभूतिदाताओं/बंधककर्ताओं के विरुद्ध अग्रसर न होने के लिए कोई निर्बंधन अधिरोपित किया गया है, भी विधि की त्रुटि कारित की है । उन्होंने 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अनेक उपबंधों का भी अवलंब लिया जो न केवल कम्पनी से संबंधित है बल्कि व्यक्तिगत प्रत्याभूतिदाताओं/बंधककर्ताओं से भी संबंधित है । याचियों के विद्वान् काउंसेल ने दलीलें देते हुए दृढ़तापूर्वक कहा कि विद्वान् ऋण वसूली अधिकरण इस बात पर विचार करने में विफल रहा कि 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता में अनेक रक्षोपाय पहले ही उपबंधित किए गए हैं जिनमें लेनदारों का हित संरक्षित किया गया है । उन्होंने इस पृष्ठभूमि में निवेदन किया कि प्रत्यर्थियों/याचियों द्वारा कार्यवाही को विलम्बित करने का जानबूझकर कोई प्रयास नहीं किया गया है और यदि रकम/ऋण का संदाय नहीं किया जाता है, तो अधिकरण को कोई अधिकार नहीं है कि वह मामले में आगे अग्रसर हो ।

16. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान्

काउंसेल श्री सतीश चतुर्वेदी ने यह निवेदन करते हुए रिट याचिकाओं का दृढ़तापूर्वक विरोध किया कि याचियों को ऋण वसूली अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की विधिमान्यता को ऋण वसूली अपील अधिकरण के समक्ष चुनौती देने के लिए प्रभावी अनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध हैं । स्वीकृततः, याची चूककर्ता प्रत्याभूतिदाता है और वे बैंक को शोध्य दायित्वों से बच नहीं सकते । 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत ऐसा कोई निर्बंधन नहीं है कि प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध स्वतंत्र रूप से कार्यवाही न की जाए । प्रत्यर्थी बैंक के अधिकार याचियों द्वारा निष्पादित प्रत्याभूति विलेख से उद्भूत होते हैं । प्रत्यर्थी बैंक ने उनको उपलब्ध अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए न्यायतः कार्यवाही की है । ऋण वसूली अधिकरण को मुख्य देनदार के प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध कार्यवाही को आगे बढ़ाने की अधिकारिता प्राप्त है । वसूली कार्यवाही प्रत्यर्थी बैंक द्वारा राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा तारीख 30 मई, 2017 का आदेश पारित किए जाने के पूर्व ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आरम्भ की गई थीं और उक्त आदेश प्रत्याभूतिदाताओं के रूप में याचियों के विरुद्ध ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कार्यवाही किए जाने के मार्ग को अवरुद्ध नहीं करता । ऋण की वसूली के लिए प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध कार्यवाही चुनौती के अधीन आदेश में उल्लिखित कारणों के आधार पर आरम्भ की जा सकती है । विद्वान् राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने निगमित देनदार से संबंधित व्यादेश का आदेश पारित किया है और याचियों को सम्मिलित करते हुए प्रत्याभूतिदाताओं के पक्ष में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है । ऋण वसूली अधिकरण द्वारा मुख्य देनदार के प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध कार्यवाही को जारी रखे जाने के विरुद्ध कोई विधिक वर्जन नहीं है और प्रत्याभूति विलेख इस बात को स्पष्ट करता है कि याचियों/प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कार्यवाही सुचारु रूप से जारी रह सकती हैं । 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता दिवाला समाधान से संबंधित है जबकि 1994 का अधिनियम देयों की वसूली से संबंधित है और इसलिए दोनों के मध्य कोई परस्पर विरोध नहीं है । याचियों/प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कार्यवाही किए जाने में कोई त्रुटि कारित नहीं की गई है ।

17. प्रत्याभूति विलेख, (रिट याचिका का संलग्नक 2), जिसको पक्षों के मध्य तारीख 28 मार्च, 2005 को निष्पादित किया गया, के पैरा 11, 14, 15, 16, 17, 18, 64 और 65 पर अत्यधिक जोर दिया गया है । इस

करार (प्रत्याभूति विलेख) के खंड 2 में यह उल्लेख किया गया है कि ऋणी की ओर से उक्त बहुपक्षीय करार में समाविष्ट नियमों, शर्तों और प्रसंविदाओं में से किसी के अनुपालन होने में या निर्वहन होने में कोई चूक किए जाने की स्थिति में प्रत्याभूतिदाता मांग किए जाने की स्थिति में उधार देने वाले को बिना किसी हिचकिचाहट के उन समस्त रकमों का तुरन्त संदाय करेंगे जो ऋणी द्वारा बहुपक्षीय करार के अन्तर्गत उसको संदेय हैं । करार विलेख का खंड 4 उपबंधित करता है कि प्रत्याभूतिदाता उपरोक्त खंड 1 में निर्दिष्ट राशियों की वसूली के लिए उधार लेने वाले और/या प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध आरम्भ की गई किसी भी विधिक कार्यवाही को सम्मिलित करते हुए समस्त हानियों, नुकसानों, लागतों, दावों और खर्चों, चाहे वे किसी भी प्रकृति के हों, जिनको उधार देने वाला बर्दाश्त कर सकता है, का संदाय करेंगे और उनको वहन करेंगे और उधार देने वाले की रक्षा करेंगे और उसकी क्षतिपूर्ति करेंगे । कार्यवाही एक साथ चल सकती है और अधिकरण को मामले में प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध अग्रसर होने से निषिद्ध नहीं किया जा सकता । उन्होंने अपने निवेदनों के समर्थन में **इलाहाबाद बैंक** बनाम **केनरा बैंक और एक अन्य**[1], **कैलाश नाथ अग्रवाल और अन्य** बनाम **प्रादेशीय इंडस्ट्रियल एण्ड इन्वेस्टमेंट कारपोरेशन आफ यू. पी. लिमिटेड और एक अन्य**[2], **यूरेका फोर्ब्स लिमिटेड** बनाम **इलाहाबाद बैंक**[3], **कमर्शियल टैक्स आफिसर, राजस्थान** बनाम **मैसर्स बिनानी सीमेंट लिमिटेड और एक अन्य**[4], **मद्रास पैट्रोकेम लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **बोर्ड आफ इंडस्ट्रियल एण्ड फाइनेन्सियल रिकन्सट्रक्शन और अन्य**[5], **पिगेसस एसेट्स रिकन्सट्रक्शन प्रा. लिमिटेड** बनाम **कोनकास्ट लिमिटेड और एक अन्य**[6] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया ।

18. इस मामले में अन्तर्वलित विवाद के मूल्यांकन के प्रयोजनार्थ 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 12, 14, 31, 33 और 60 को नीचे उद्धृत किया गया है :—

---

[1] (2000) 4 एस. सी. सी. 406.
[2] (2003) 4 एस. सी. सी. 305.
[3] 2010 लासूट (एस. सी.) 261.
[4] 2014 (3) एस. सी. 378.
[5] (2016) 4 एस. सी. सी. 1.
[6] (2016) 4 एस. सी. सी. 47.

"2. **लागू होना** – इस संहिता के उपबंधों को –

(क) कम्पनी अधिनियम, 2013 या किसी पूर्व कंपनी विधि के अधीन निगमित कोई कम्पनी ;

(ख) तत्समय प्रवृत किसी विशेष अधिनियम द्वारा शासित कोई अन्य कम्पनी सिवाय जहां तक ऐसे विशेष अधिनियम के उपबंधों के साथ वहां उक्त उपबंध असंगत न हो ;

(ग) सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 के अधीन निगमित कोई सीमित दायित्व भागीदारी ; (घ) तत्समय प्रवृत किसी विधि के अधीन निगमित ऐसा निगमित निकाय जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा निमित्त अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे ; और

(ङ) भागीदारी फर्म और व्यष्टि,

यथास्थिति, दिवालिया, परिसमापन या शोधन अक्षमता को लागू होना ।

3. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(1) 'बोर्ड' से धारा 188 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित भारतीय दिवाला और शोध्य अक्षमता बोर्ड अभिप्रेत है ;

(2) 'पीठ' से न्यायनिर्णायक प्राधिकारी की कोई पीठ अभिप्रेत है ;

(3) 'उपविधि' से धारा 205 के अधीन दिवाला वृत्तिक अभिकरण द्वारा बनाई गई उपविधियां अभिप्रेत हैं ;

(4) 'प्रभार' से, यथास्थिति, किसी व्यक्ति की संपत्ति या आस्तियों पर कोई हित या सृजित धारणाधिकार या कोई वचनबद्ध या कोई प्रतिभूति दोनों के रूप में अभिप्रेत है और जिसके अन्तर्गत बंधक भी है ;

(5) 'अध्यक्ष' से बोर्ड का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(6) 'दावा' से –

(क) संदाय का कोई अधिकार, चाहे या किसी निर्णय, नियत, विवादित, अविवादित, विधिक, साम्यापूर्ण, प्रतिभूति या अप्रतिभूति के लिए घटा दिया गया ऐसा अधिकार जिसके

अन्तर्गत उधार या अग्रिम भी है ; या

(ख) तत्समय प्रवृत किसी विधि के अधीन संविदा के भंग के लिए उपचार, यदि ऐसा भंग संदाय के किसी अधिकार से उत्पन्न होता है निर्णय, नियत, परिपक्व, अपरिपक्व, विवादित, अविवादित, प्रतिभूति या अप्रतिभूति की कटौती से दिया गया ऐसा अधिकार है या नहीं,

अभिप्रेत है ;

(7) "निगमित व्यक्ति" से कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 के खंड (20) में यथा परिभाषित कोई कंपनी, सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ढ) में यथा परिभाषित कोई सीमित दायित्व भागीदारी या कोई अन्य व्यक्ति, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन सीमित दायित्व के साथ निगमित हैं, किन्तु इसके अंतर्गत कोई वित्तीय सेवाएं प्रदाता नहीं है ।

(8) "निगमित ऋणी" से कोई निगमित व्यक्ति अभिप्रेत है जो व्यक्ति किसी ऋण से ऋणी है ।

(9) "कोर सेवाएं" से –

(क) किसी ऐसे रूप और रीति में वित्तीय जानकारी को इलैक्ट्रोनिक प्ररूप में भेजने को स्वीकार करना, जो विहित की जाए,

(ख) वित्तीय जानकारी का सुरक्षित और शुद्ध अभिलिखित करना,

(ग) किसी व्यक्ति द्वारा भेजी गई वित्तीय जानकारी को अधिप्रमाणित और सत्यापन करना,

(घ) व्यक्तियों को उपयोगी जानकारी के साथ भंडारित जानकारी तक पहुंच उपलब्ध कराना जो विनिर्दिष्ट किया जाए,

के लिए उपयोगी जानकारी द्वारा दी जाने वाली सेवाएं अभिप्रेत हैं,

(10) "लेनदार" से कोई व्यक्ति जो किसी ऋण से ऋणी अभिप्रेत है जो किसी व्यक्ति को शोध्य और जिसके अंतर्गत कोई

वित्तीय ऋण तथा प्रचालन ऋणी भी है ।

(11) "ऋण" से किसी दावे के संबंध में कोई दायित्व या बाध्यता अभिप्रेत है और किसी शंका को दूर करने के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि ऋण के अंतर्गत कोई वित्तीय प्रचालन ऋणी भी है,

(12) "व्यतिक्रम" से किसी ऋण का तब असंदाय अभिप्रेत है, जब ऋण की संपूर्ण रकम या कोई भाग या किस्त देय और संदेय हो जाती है तथा उसका, यथास्थिति, ऋणी या निगमित ऋणी द्वारा पुनर्संदाय नहीं किया जाता है,

5. **परिभाषाएं** – इस भाग में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हों, –

(1) "न्यायनिर्णायक प्राधिकरण" से इस भाग के प्रयोजनों के लिए कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 408 के अधीन गठित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण अभिप्रेत है ;

(2) "लेखा परीक्षक" से चार्टर्ड अकाउंटेंट अधिनियम, 1949 की धारा 6 के अधीन भारतीय चार्टर्ड अकाउंटेंट संस्थान द्वारा ऐसे रूप में व्यवसाय के लिए सत्यापित कोई चार्टर्ड अकाउंटेंट अभिप्रेत है ;

(3) "अध्याय" से इस भाग के अधीन कोई अध्याय अभिप्रेत है ;

(4) किसी निगमित व्यक्ति के संबंध में "गठन दस्तावेज" जिसके अन्तर्गत संगम अनुच्छेद, किसी कंपनी के संगम ज्ञापन और किसी सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदारी करार भी है ;

(5) "निगमित आवेदक" से निम्नलिखित अभिप्रेत है –

(क) कोई निगमित ऋणी ;

(ख) निगमित व्यक्ति का कोई संदाय या भागीदार, जो निगमित व्यक्ति के गठन दस्तावेजों के अधीन निगमित दिवाला, संकल्प, प्रक्रिया के लिए कोई आवेदन कर सकेगा ;

(ग) कोई व्यष्टि जो निगमित ऋणी के संपूर्ण प्रचालन और संसाधनों के प्रबंध का भारसाधक है ;

(घ) कोई व्यक्ति जो निगमित ऋणी के वित्तीय मामलों का

नियंत्रण, अधीक्षण, या अन्वेक्षा करता है ; या

अध्याय 2 – निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया

6. **व्यक्ति जो निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकेंगे** – जहां कोई वित्तीय ऋणी, किसी वित्तीय लेनदार का व्यतिक्रम करता है, कोई प्रचालनीय लेनदार या कोई निगमित ऋणी चयन इस अध्याय के अधीन यथा उपबंधित रीति में ऐसे निगमित ऋणी के संबंध में निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकेगा ।

7. **वित्तीय लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया का प्रारम्भ** – (1) कोई वित्तीय लेनदार स्वयं या किसी अन्य वित्तीय लेनदार के साथ संयुक्त रूप से न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के समक्ष किसी निगमित ऋणी के विरुद्ध, निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए आवेदन फाइल कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, कोई व्यक्तिक्रम, जिसके अन्तर्गत निगमित ऋणी के किसी वित्तीय लेनदार से लिए जाने वाले किसी वित्तीय ऋण के संबंध में कोई व्यतिक्रम भी है किन्तु आवेदक केवल किसी अन्य निगमित ऋणी का कोई वित्तीय लेनदार नहीं होगा ।

(2) वित्तीय लेनदार उपधारा (1) के अधीन ऐसे प्ररूप और रीति में आवेदन कर सकेगा तथा जिसके साथ ऐसी फीस भी होगी, जो विहित की जाएं ।

(3) वित्तीय लेनदार आवेदन के साथ निम्नलिखित देगा –

(क) जानकारी उपयोगिता के साथ अभिलिखित व्यतिक्रम के सबूत या व्यतिक्रमों के ऐसे अन्य अभिलेख, जो विनिर्दिष्ट किए जाएं ;

(ख) किसी अंतरिम समाधान वृत्तिक के रूप में कार्य करने का समाधान वृत्तिक का नाम ; और

(ग) ऐसी अन्य जानकारी जो बोर्ड द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए ।

(4) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी उपधारा (2) के अधीन आवेदन की

प्राप्ति के चौदह दिन के भीतर या जानकारी उपयोगिता के अभिलेखों उपधारा (3) के अधीन वित्तीय लेनदार के द्वारा अन्य साक्ष्य के अभिलेख देने के आधार पर किसी व्यतिक्रम के विद्यमानतः को सुनिश्चित करेगा ;

(5) जहां न्यायनिर्णायक प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि –

(क) जहां कोई व्यतिक्रम हुआ है और उपधारा (2) के अधीन आवेदन पूर्ण है और प्रस्तावित समाधान वृत्तिक के विरुद्ध कोई अनुशासनिक प्रक्रिया लंबित नहीं है, आदेश द्वारा ऐसे आवेदन को स्वीकार कर सकेगा ;

(ख) जहां कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ है और उपधारा (2) के अधीन आवेदन अपूर्ण है और प्रस्तावित समाधान वृत्तिक के विरुद्ध कोई अनुशासनिक प्रक्रिया लंबित है, आदेश द्वारा ऐसे आवेदन को अस्वीकार कर सकेगा :

परन्तु न्यायनिर्णायक प्राधिकारी, उपधारा (5) के खंड (ख) के अधीन अपूर्ण होने के आधार पर आवेदन को निरस्त करने से पूर्व इस संबंध में आवेदक को, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी से ऐसी सूचना की प्राप्ति के तीन दिन के भीतर अपने आवेदन के दोषों को दूर करने के लिए आवेदक को अवसर देना आवश्यक होगा ।

(6) उपधारा (5) के अधीन आवेदन के स्वीकार करने की तारीख से निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ होगी ।

(7) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी –

(क) निगमित लेनदार और निगमित ऋणी को उपधारा (5) के खंड (क) के अधीन आदेश ;

(ख) वित्तीय लेनदार को उपधारा (5) के खंड (ख) के अधीन आदेश, यथास्थिति, ऐसे आवेदन के स्वीकार करने या उसके निरस्त करने के दो दिन के भीतर,

संसूचित किया जाएगा ।

8. **प्रचालन लेनदार द्वारा दिवाला समाधान** – (1) कोई प्रचालन लेनदार किसी व्यक्तिक्रम के होने पर कोई असंदत्त प्रचालन ऋण की

मांग सूचना या निगमित ऋणी को व्यतिक्रम में अन्तर्वलित रकम के संदाय की मांग के लिए किसी बीजक की प्रति ऐसे प्ररूप में सूचना उपयोगिता के माध्यम से, जहां लागू हो, या रजिस्ट्रीकृत डाक या कोरियर या कोई अन्य इलैक्ट्रोनिक संसाधन, जो विनिर्दिष्ट किया जाए, द्वारा भेजेगा ।

(2) ऐसा निगमित ऋणी मांग सूचना की तारीख के या प्रचालन लेनदार की सूचना, जो उपधारा (1) में वर्णित बीजक की प्रति प्राप्त होने के दस दिन के भीतर –

(क) किसी विवाद, यदि कोई हो, और वाद के लंबित होने के अभिलेख या ऐसे बीजक की प्राप्ति के पूर्व कम से कम साठ दिन पूर्व फाइल किए गए माध्यस्थम् कार्रवाई या किसी जानकारी उपयोगिता या रजिस्ट्रीकृत डाक या कोरियर या किसी इलेक्ट्रोनिक संसाधन द्वारा ऐसे विवाद के संबंध में सूचना के विद्यमान होने पर ;

(ख) असंदत्त प्रचालन ऋण का पुनर्संदाय --

(i) निगमित ऋणी के बैंक खाते से असंदत्त रकम के इलैक्ट्रोनिक अंतरण की सत्यापित प्रति भेजे जाने द्वारा ; या

(ii) अभिलेख की सत्यापित प्रति जो प्रचालन लेनदार द्वारा निगमित ऋणी द्वारा जारी किसी चैक के भुनाने का सबूत है, भेजने के द्वारा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए, "मांग सूचना" से किसी निगमित लेनदार द्वारा प्रचालन ऋणी को प्रचालन ऋण के संदाय की मांग जो व्यतिक्रम से उत्पन्न हुई है, के संबंध में तामील कोई सूचना अभिप्रेत है ।

10. **निगमित लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया का प्रारम्भ** – (1) जहां कोई व्यक्तिक्रम उत्पन्न होता है, कोई निगमित आवेदक न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए आवेदन फाइल कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन आवेदन ऐसे प्ररूप में फाइल होगा

जिसमें ऐसी विशिष्टियां प्रविष्ट होंगी और ऐसे प्ररूप में तथा उसके साथ ऐसी फीस होगी जो विहित की जाए ।

(3) निगमित आवेदक, आवेदन के साथ निम्नलिखित संबंधित जानकारी देगा, –

(क) ऐसी अवधि की अपनी लेखा बही और ऐसे अन्य दस्तावेज, जो विनिर्दिष्ट की जाए ; और

(ख) प्रस्तावित समाधान वृतिक को अंतरिम समाधान वृतिक के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त होगा ।

(4) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी आवेदन प्राप्ति से चौदह दिन की अवधि के भीतर निम्नलिखित आदेश करेगा, –

(क) आवेदन स्वीकार है यदि वह पूर्ण है ;

(ख) आवेदन अस्वीकार है यदि वह अपूर्ण है ;

(5) निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया उपधारा (4) के अधीन आवेदन के स्वीकार होने की तारीख से प्रारम्भ होगी ।

12. **दिवाला समाधान प्रक्रिया के पूर्ण होने के लिए समयसीमा** – (1) उपधारा (2) के अधीन रहते हुए निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया ऐसे प्रक्रिया के प्रारम्भ करने को आवेदन के स्वीकार करने की तारीख से एक सौ अस्सी दिन की अवधि के भीतर पूर्ण होगी ।

(2) समाधान वृत्तिक एक सौ अस्सी दिन की अवधि से परे न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को निगमित दिवाला समाधान की अवधि का विस्तार करने को आवेदन फाइल करेगा यदि ऋणियों की समिति की किसी बैठक में ऐसा पारित संकल्प मतदान शेयर का 75 प्रतिशत किसी बोर्ड द्वारा समर्थित होगा, ऐसा करने का निदेश दिया जाता है ।

(3) उपधारा (2) के अधीन किसी आवेदन की प्राप्ति पर यदि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि मामले की विषयवस्तु ऐसी है कि कोई निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया विधिपूर्वक एक सौ अस्सी दिन के भीतर पूरी नहीं की जा सकती है, वह आदेश द्वारा ऐसी प्रक्रिया की अवधि को एक सौ अस्सी दिन से परे ऐसी और अवधि के लिए विस्तारित कर सकेगा जो नब्बे दिन से अधिक नहीं होगी, विस्तारित कर सकेगा :

परन्तु इस आधार के अधीन निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया का कोई विस्तार एक बार से अधिक अनुदत्त नहीं होगा ।

14. **अधिस्थगन**. – (1) उपधारा (2) और उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, दिवाला प्रारम्भ की तारीख को, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी सभी को आदेश द्वारा प्रतिषिद्ध के लिए निम्नलिखित अधिस्थगन की घोषणा करेगा, अर्थात् –

(क) निगमित ऋणी के विरुद्ध वाद को संस्थिगत करने या वादों को जारी रखने, कार्रवाइयां जिसके अंतर्गत विधि के किसी न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम्, पैनल या अन्य प्राधिकारी के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश का निष्पादन भी है, संस्थित करना या उसको जारी रखना ;

(ख) निगमित ऋणी से उसकी किसी आस्ति का अंतरण विल्लंगम करना, अन्य संक्रामण या व्ययन करना या किसी विधिक अधिकार या उसमें हित का कोई फायदा ;

(ग) किसी संपत्ति के संबंध में निगमित ऋणी द्वारा सृजित किसी प्रतिभूत हित के पुरोबंध, वसूली या प्रवृत्त की कोई कार्रवाई जिसके अन्तर्गत वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अधीन कोई कार्रवाई भी है –

(2) निगमित ऋणी को आवश्यक वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति, जैसा विनिर्दिष्ट किया जाए, को अधिस्थगन कालावधि के दौरान समाप्त या निलंबित या बाधित नहीं किया जाएगा ।

(3) ऐसे संव्यवहारों, जो किसी वित्तीय सैक्टर के विनियामक के साथ परामर्श से केन्द्रीय सरकार द्वारा यथा अधिसूचित किए जाए, को उपधारा (1) के उपबंध लागू नहीं होंगे ।

(4) अधिस्थगन का आदेश, ऐसे आदेश की तारीख से निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के पूरा होने तक प्रभावी रहेगा :

परन्तु जहां निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया अवधि के किसी समय के दौरान यदि धारा 31 की उपधारा (2) के अधीन सम्यक् रूप से जमा समाधान योजना के अनुमोदन या धारा 33 की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन निगमित ऋणी के परिसमापन को लेनदार की

समिति द्वारा समाधान कर लिया गया है, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी, यथास्थिति, ऐसे अनुमोदन की तारीख से परिसमापन आदेश के प्रभाव से अधिस्थगन, समाप्त होगा ।

31. **समाधान योजना का अनुमोदन** – (1) यदि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी का समाधान हो जाता है कि –

(i) धारा 30 की उपधारा (4) के अधीन लेनदारों की समिति द्वारा यथा अनुमोदित समाधान योजना को उस उपधारा (2) में निर्दिष्ट अपेक्षाओं को पूरा करते हैं ; और

(ii) निगमित दिवाला समाधान अवधि के दौरान समाधान वृत्तिक द्वारा शक्तियों के निर्वहन में कोई तात्विक अनियमितता नहीं है ;

और वह आदेश द्वारा समाधान योजना को अनुमोदित करेगा, जो निगमित ऋणी तथा उसके कर्मचारियों, सदस्यों, लेनदारों और गारंटरों पर तथा समाधान योजना में अंतर्वलित अन्य पणधारियों पर बाध्यकर होगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन अनुमोदन आदेश के पश्चात्, –

(क) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी द्वारा धारा 14 के अधीन अधिस्थगन आदेश को विरत रहने का प्रभाव रखेगा ; और

(ख) समाधान वृत्तिक निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया संचालित करने के सभी अभिलेख और समाधान योजना तथा ऐसी निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया से संबंधित जानकारी का डाटा बेस के अभिलेख बोर्ड को भेजेगा ।

33. **परिसमापन का प्रारम्भ** – (1) यदि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी दिवाला समाधान प्रक्रिया अवधि या धारा 12 के अधीन निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के पूर्ण होने के लिए अनुज्ञात अधिकतम अवधि या धारा 56 के अधीन त्वरित निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के समाप्त होने के पूर्व या धारा 30 की उपधारा (6) के अधीन कोई समाधान योजना प्राप्त नहीं होने पर उसमें विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं के अननुपालन के लिए धारा 31 की उपधारा (2) के अधीन समाधान योजना को निरस्त कर सकेगा, वह –

(i) इस अध्याय में अधिकथित रीति में निगमित ऋणी के परिसमापन का अपेक्षित आदेश पारित करेगा ;

(ii) लोक घोषणा जारी करेगा कि निगमित ऋणी परिसमापन में है ; और

(iii) ऐसे आदेश को सूचना प्राधिकारी को भेजने की अपेक्षा करेगा जिससे निगमित ऋणी रजिस्ट्रीकृत है ।

(2) जहां समाधान वृत्तिक निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया के दौरान किसी समय किन्तु समाधान योजना की पुष्टि से पूर्व लेनदारों की समिति का निगमित ऋणी के परिसमापन के लेनदारों की समिति के विनिश्चय को न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को सूचित करता है, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी उपधारा (1) के खंड (i), खंड (ii) और खंड (iii) में यथानिर्दिष्ट परिसमापन आदेश पारित कर सकेगा ;

(3) जहां संबंधित निगमित ऋण द्वारा न्यायनिर्णायक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित समाधान योजना का उल्लंघन किया जाता है, निगमित ऋण से भिन्न कोई व्यक्ति जिसके ऐसे उल्लंघन द्वारा हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, उपधारा (1) के खंड (i), (ii) और (iii) में यथानिर्दिष्ट किसी परिसमापन आदेश के लिए न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के लिए आवेदन कर सकेगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन किसी आवेदन की प्राप्ति पर यदि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी यह अवधारित करता है कि निगमित ऋणी ने समाधान योजना के उपबंधों का उल्लंघन किया है वह उपधारा (1) के खंड (i), (ii) और (iii) में यथानिर्दिष्ट किसी परिसमापन आदेश पारित करेगा ।

(5) धारा 52 के अधीन रहते हुए जब कोई परिसमापन आदेश पारित किया गया है निगमित ऋणी या उसके विरुद्ध कोई वाद या कोई अन्य विधिक कार्यवाही संस्थित नहीं होगी :

परन्तु न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के पूर्व अनुमोदन से निगमित ऋणी के निमित्त परिसमापक द्वारा कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाही संस्थित की जा सकेगी :

परन्तु यह और कि इस उपधारा में किसी बात के होते हुए भी उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में लंबित

किसी कार्यवाही को लागू नहीं होगी ।

(6) उपधारा (4) के उपबंध ऐसे संव्यवहारों के, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा किसी वित्तीय क्षेत्र के विनियामक के परामर्श से अधिसूचित किए जाएं, संबंध विधिक कार्यवाहियों को लागू नहीं होगी ।

(7) तब के सिवाय, जब समापक द्वारा निगमित ऋणी का कारबार समापन की प्रक्रिया के दौरान जारी रखा जाता है, धारा 31 के अधीन समापन आदेश को निगमित ऋणी के अधिकारियों, कर्मचारियों और कर्मकारों के प्रति कार्यमुक्ति सूचना समझा जाएगा ।

अध्याय 6 – निगमित व्यक्तियों के लिए न्यायनिर्णायक प्राधिकारी –

60. (1) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी, निगमित व्यक्तियों, जिसके अंतर्गत निजी प्रत्याभूतिदाता सहित निगमित ऋणी भी हैं, के दिवाला समाधान और समापन के संबंध में उस स्थान पर, जहां कंपनी का रजिस्ट्रीकृत कार्यालय अवस्थित है, राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता रखने वाला राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण होगा ।

(2) उपधारा (1) पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना और इस संहिता में अंतर्विष्ट किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, जहां राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष किसी निगमित ऋणी की कोई निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया या समापन कार्यवाहियां लंबित हैं, वहां ऐसे निगमित ऋणी के निजी प्रत्याभूतिदाता की कोई दिवाला समाधान प्रक्रिया या शोधन अक्षमता संबंधी कार्यवाहियां राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष फाइल की जाएगी ।

(3) निगमित ऋणी की निजी प्रत्याभूतिदाता की न्यायालय में लम्बित दिवाला समाधान प्रक्रिया या शोधन अक्षमता प्रक्रिया, ऐसे निगमित ऋणी की दिवाला समाधान प्रक्रिया या समापन कार्यवाहियों का निपटारा करने वाले न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को अंतरित हो जाएगी ।

(4) राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण में ऋण वसूली अधिकरण की ऐसी सभी शक्तियां निहित होंगी, जो इस उपधारा के प्रयोजन के लिए इस संहिता के भाग 3 के अधीन अनुध्यात हैं ।

(5) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के

होते हुए भी, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को, –

(क) किसी निगमित ऋणी या निगमित व्यक्ति द्वारा या उसके विरुद्ध किसी आवेदन या कार्यवाही को ;

(ख) निगमित ऋणी या निगमित व्यक्ति द्वारा या उसके विरुद्ध किए गए किसी दावे को, जिसके अंतर्गत भारत में स्थित उसकी समनुषंगियों द्वारा या उनके विरुद्ध किए गए दावे भी हैं ; और

(ग) पूर्विकता के किसी प्रश्न या विधि या तथ्यों के ऐसे किसी प्रश्न को, जो इस संहिता के अधीन निगमित ऋणी या निगमित व्यक्ति की दिवाला समाधान या समापन कार्यवाहियों से या उसके संबंध में उद्भूत हुआ है,

ग्रहण करने या उसका निपटारा करने की अधिकारिता होगी ।

(6) परिसीमन अधिनियम, 1963 और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किसी ऐसे निगमित ऋणी के नाम से या उसकी ओर से, जिसके लिए इस भाग के अधीन अधिस्थगन का आदेश पारित किया गया है, कोई वाद या आवेदन के लिए विनिर्दिष्ट परिसीमा की कालावधि की संगणना में ऐसी अवधि को अपवर्जित किया जाएगा, जिसके दौरान ऐसा अधिस्थगन हुआ था ।"

19. धारा 6 उपबंधित करती है कि जहां कोई वित्तीय ऋणी, किसी वित्तीय लेनदार का व्यतिक्रम करता है, कोई प्रचालनीय लेनदार या कोई निगमित ऋणी चयन इस अध्याय के अधीन यथा उपबंधित रीति में ऐसे निगमित ऋणी के संबंध में निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकेगा । धारा 7 वित्तीय लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया को प्रारम्भ किए जाने पर विचार करती है और धारा 8 प्रचालन लेनदार द्वारा दिवाला समाधान पर विचार करती है । धारा 10 निगमित लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया को प्रारम्भ किए जाने के लिए उपबंधित करती है । निगमित आवेदक निगमित देनदार के खातों और अन्य दस्तावेजों के साथ न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सकता है । न्यायनिर्णायक प्राधिकारी आवेदन को प्राप्त किए जाने की तारीख से 14 दिनों की अवधि के भीतर आवेदन को, यदि वह सभी प्रकार से पूर्ण है, सुनवाई के लिए ग्रहण कर सकता है या यदि वह अपूर्ण है, अस्वीकृत कर

सकता है । धारा 10(5) स्पष्टतया उल्लिखित करती है कि निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया इस धारा की उपधारा (4) के अधीन आवेदन को सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने की तारीख से आरम्भ होगी । धारा 12 दिवाला समाधान प्रक्रिया के पूर्ण किए जाने की समयावधि से संबंधित है । यह धारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया की समाप्ति के लिए 180 दिनों की समयावधि को विहित करती है जिसको 90 दिनों तक पुनः विस्तारित किया जा सकता है । समयावधि के विस्तार की अवधि के लिए आवेदन केवल सामाधान वृत्तिक द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है और इस आवेदन के समर्थन में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाना होता है जिसको लेनदारों की समिति में 75 प्रतिशत मतों वाली बहुसंख्या द्वारा पारित किया जाना होता है । धारा 14 उपबंधित करती है कि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी दिवाला के आरम्भ होने की तारीख पर आदेश के द्वारा ऋणस्थगन के लिए घोषणा करेगा जिसके द्वारा विधि के किसी न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम् पैनल या अन्य प्राधिकारी के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को सम्मिलित करते हुए वादों को संस्थित किए जाने या निगमित देनदारों के विरुद्ध लम्बित वादों या कार्यवाहियों के चलते रहने को प्रतिषिद्ध कर दिया जाएगा ।

20. धारा 30 ऐसे तरीकों को उपबंधित करती है जिसमें समाधान आवेदन द्वारा कोई समाधान योजना प्रस्तुत की जा सकती है । इस पर कोई निर्बंधन नहीं है कि समस्त लागू विधियों के अनुपालन के अध्यधीन रहते हुए समाधान आवेदक कौन हो सकता है । इसमें (समाधान आवेदक में) निगमित देनदार के प्रवर्तक भी सम्मिलित हो सकते हैं । यह उपबंध वाणिज्यिक रूप से व्यवहार्य किन्तु दिवाला कारोबारों से संबंधित अस्तित्वों को बचाने और इस प्रक्रिया में समस्त हितधारकों के लिए महत्व सृजित करने में हितकर लोगों से प्राप्त प्रस्तावों को सुकर बनाता है । समाधान वृत्तिक ऐसी समाधान योजना प्रस्तुत करेगा जो लेनदारों की समिति, जो ऐसी किसी समाधान योजना को मताधिकार रखने वाले अंशधारकों की 75 प्रतिशत बहुसंख्या द्वारा अनुमोदित करते हों, को धारा 30(2) के खंड (क) से (च) के अधीन उपबंधित श्रेणियों की पुष्टि करने वाली हो । इसके पश्चात् ही समाधान वृत्तिक 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 30(6) में समाविष्ट उपबंधों के अनुसार उस समाधान योजना को न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है जिसका अनुमोदन लेनदारों की समिति द्वारा किया गया हो । धारा 31(1) समाधान योजना के अनुमोदन पर विचार करती है और उपबंधित करती है कि यदि

न्यायनिर्णायक प्राधिकारी का समाधान हो जाता है कि धारा 30 की उपधारा (4) के अधीन लेनदारों की समिति द्वारा यथा अनुमोदित समाधान योजना को उस उपधारा (2) में निर्दिष्ट अपेक्षाओं को पूरा करते हैं और निगमित दिवाला समाधान अवधि के दौरान समाधान वृत्तिक द्वारा शक्तियों के निर्वहन में कोई तात्विक अनियमितता नहीं है और वह आदेश द्वारा समाधान योजना को अनुमोदित करेगा, जो निगमित ऋणी तथा उसके कर्मचारियों, सदस्यों, लेनदारों और गारंटरों पर तथा समाधान योजना में अंतर्वलित अन्य पणधारियों पर बाध्यकर होगा । यहां तक कि 31(2) उपबंधित करती है कि उपधारा (1) के अधीन अनुमोदन आदेश के पश्चात्, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी द्वारा धारा 14 के अधीन अधिस्थगन आदेश को विरत रहने का प्रभाव रखेगा और समाधान वृत्तिक निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया संचालित करने के सभी अभिलेख और समाधान योजना तथा ऐसी निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया से संबंधित जानकारी का डाटा बेस के अभिलेख बोर्ड को भेजेगा । धारा 33 निगमित देनदार के परिसमापन के लिए उपबंधित करती है ।

21. धारा 60 अनुध्यात करती है कि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी, निगमित व्यक्तियों, जिसके अंतर्गत निजी प्रत्याभूतिदाता सहित निगमित ऋणी भी हैं, के दिवाला समाधान और समापन के संबंध में उस स्थान पर, जहां कंपनी का रजिस्ट्रीकृत कार्यालय अवस्थित है, राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता रखने वाला राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण होगा । 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 60 के अन्तर्गत समाविष्ट उपबंधों के अनुसार निगमित देनदारों के दिवाला समाधान और परिसमापन के प्रयोजनार्थ राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण न्यायनिर्णायक प्राधिकारी होगा और यह धारा अधिकरण की क्षेत्रीय अधिकारिता को स्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ मानदंड भी अधिकथित करती है । किसी निगमित देनदार के मामले में व्यक्तिगत प्रत्याभूतिदाता से संबंधित दिवाला समाधान या शोधन अक्षमता कार्यवाही भी राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष फाइल की जाएगी ।

22. इस प्रक्रम पर यह उपदर्शित किया जाना सुसंगत होगा कि 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 5, 7, 9, 14, 15, 17, 18, 21, 24, 25, 29, 30, 196 और 208 सपठित धारा 240 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए भारत के दिवाला और शोधन

अक्षमता बोर्ड ने तारीख 30 नवम्बर, 2016 "2016 का भारत का दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड (निगमित व्यक्तित्वों के लिए दिवाला समाधान प्रक्रिया) विनियम (संक्षेप में 2016 का विनियम)" विरचित किए हैं । अध्याय-II का विनियम 3 समाधान वृत्तिक की अर्हता को उपबंधित करता है और अध्याय-IV के अधीन विनियम 10 दावों के प्रतिस्थापन पर विचार करता है । अध्याय-IX के अधीन विनियम 35 (दिवाला समाधान प्रक्रिया लागत) परिसमापन के मूल्य पर विचार करता है । विनियम 36 सूचना ज्ञापन के लिए उपबंधित करता है । विनियम 36(च) प्रत्याभूतियों, जो निगमित लेनदारों के ऋणों के संबंध में अन्य व्यक्तियों द्वारा दी गई हैं, के विवरण के बारे में यह विनिर्दिष्ट करते हुए उपबंधित करता है कि कौन-कौन से प्रत्याभूतिदाता संबंधित पक्ष हैं ।

23. दोनों पक्षों द्वारा दी गई दलीलों के उपरान्त जो तथ्यात्मक स्थिति हमारे समक्ष प्रश्नगत अभिलेख से उत्पन्न होती है, यह है कि याची कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के पूर्व निदेशक हैं । भारतीय स्टेट बैंक ने ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) को मुख्य ऋणी के रूप में दर्शित करते हुए और याचियों को प्रत्याभूतिदाता के रूप में दर्शित करते हुए 72,75,29,053.71 रुपए की वसूली के लिए प्रश्नगत मूल आवेदन फाइल किया है । याचियों ने उनके विरुद्ध फाइल की गई कार्यवाही को स्थगित किए जाने के लिए आवेदन फाइल किए हैं । ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 6 जुलाई, 2017 के आक्षेपित आदेश द्वारा कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के विरुद्ध लम्बित कार्यवाहियों को इलाहाबाद स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा पारित तारीख 30 मई, 2017 के आदेश, जिसके द्वारा 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन समस्त विधिक कार्यवाहियों पर ऋणस्थगन अधिरोपित कर दिया गया, के आधार पर स्थगित कर दिया और याचियों को लिखित कथन फाइल करने और विदेश आव्रजन या वीजा या यात्रा परमिटों के लिए विदेश मंत्रालय प्राधिकारियों के समक्ष लम्बित आवेदनों के विवरण, भारत में और विदेश में उनकी स्वामित्वाधीन संपत्तियों के विवरण, भारत में और विदेशों में उनके अनन्य कारबार या भागीदारी के अन्तर्गत कारबार के विवरण और शपथपत्र पर उनके बैंक खातों और निक्षेपों को सम्मिलित करते हुए समस्त चल और अचल आस्तियों, के विवरण प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया है । इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके दायित्व समकालीन हैं किन्तु सम्पूर्ण कार्यवाही

वर्तमान में अनिश्चित स्थिति में है और एक ही वाद कारण के लिए दो अलग-अलग कार्यवाहियां, एक ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष और दूसरी राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष नहीं चल सकती ।

24. 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता का उद्देश्य स्पष्ट हैं और धारा 60(1) के अधीन समाविष्ट उपबंधों के अनुसार के निगमित देनदारों और व्यक्तिगत प्रत्याभूतिदाताओं को सम्मिलित करते हुए निगमित व्यक्तित्वों के लिए दिवाला समाधान और परिसमापन के संबंध में न्यायनिर्णायक प्राधिकारी राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण होगा । राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण पहले ही कम्पनी (जो परिसमापन का सामना कर रही है) के विरुद्ध दिवाला समाधान की प्रक्रिया से संबद्ध है और इसके अतिरिक्त भारतीय स्टेट बैंक भी अपने दावे के संबंध में उक्त कार्यवाही में उपस्थित हो चुका है । भारतीय स्टेट बैंक ने किसी भी समयबिन्दु पर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों से स्वयं को असबंद्ध नहीं किया है और वह सक्रिय रूप से कार्यवाही में भाग ले रहा है ।

25. इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने अपने तारीख 30 मई, 2017 के आदेश द्वारा वादों को संस्थित किए जाने या निगमित देनदार के विरुद्ध विधि के किसी न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम् पैनल या किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के निष्पादन को सम्मिलित करते हुए लम्बित वादों या कार्यवाहियों के चलते रहने, निगमित देनदार द्वारा उसकी किसी भी आस्ति या उसमें किसी विधिक अधिकार या हितकर लाभ को अन्तरित, धारित, हस्तांतरित या निस्तारित करने से, निगमित देनदार द्वारा उसकी किसी संपत्ति के संबंध में, 2002 के सरफेसी अधिनियम के अधीन किसी कार्रवाई को आगे सम्मिलित करते हुए, किसी संपत्ति के स्वामी या पट्टादाता द्वारा किसी संपत्ति का कब्जा प्राप्त किए जाने, जहां वह संपत्ति निगमित देनदार के अधिभोग में है या उसके कब्जे में है, सृजित किसी प्रतिभूति हित को प्रतिबंधित करने, वसूल करने या प्रवर्तित करने से संबंधित किसी कार्यवाही को प्रतिषिद्ध कर दिया है ।

26. **व्हिर्लपूल कारपोरेशन** बनाम **रजिस्ट्रार आफ ट्रेडमार्क्स मुम्बई और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन परमाधिकार की रिट जारी करने की

---

[1] (1998) 8 एस. सी. सी. 1.

शक्ति वैवेकिक प्रकृति की है और यह शक्ति संविधान के किसी अन्य उपबंध द्वारा सीमित नहीं की गई है । उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि किसी रिट याचिका पर विचार करने या न विचार करने या न करने का विवेकाधिकार प्राप्त है । किन्तु उच्च न्यायालय ने अपने ऊपर कतिपय निबंधन अधिरोपित कर लिए हैं, जिनमें से एक यह है कि यदि किसी अन्य विधि के अन्तर्गत कोई प्रभावी अनुतोष उपलब्ध है, तो सामान्यतः उच्च न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग नहीं करेगा ।

27. **पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड** बनाम **श्री विक्रम काटन मिल्स और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने जो अभिनिर्धारित किया, वह निम्नलिखित है :–

> "13. तथापि, हम उच्च न्यायालय से सहमत होने में असमर्थ हैं कि फाइल किया गया वाद समय-पूर्व था । बैंक रंजीत सिंह द्वारा निष्पादित बंधपत्र के निबंधनों के अनुसार कम्पनी और साथ ही साथ रंजीत सिंह से वचनपत्र और बंधपत्र के अधीन शोध्य राशि का दावा किसी भी समय करने की हकदार थी । अतः वाद को समय-पूर्व नहीं कहा जा सकता । उच्च न्यायालय को वाद को खारिज करने के बजाय विनिर्धारित करना चाहिए था । हम यह अभिनिर्धारित करना आवश्यक प्रतीत करते हैं कि 1956 के कम्पनी अधिनियम की धारा 391 की अधिनियमिति के अधीन कम्पनी और उसके लेनदारों के मध्य सृजित बाध्यकारी बाध्यता जमानतदारों के दायित्व को प्रभावित नहीं करती जब तक कि जमानत की संविदा में अन्यथा रूप से उपबंध समाविष्ट न हों । जैसा कि हाल्सबरी ने ला आफ इंग्लैंड, खंड 6, तीसरा संस्करण, अनुच्छेद 1555, पृष्ठ 771 पर मताभिव्यक्ति की है –
>
> > 'किसी भी योजना के अन्तर्गत ऋणों के संबंध में कम्पनी के जमानतदारों के विरुद्ध किसी भी लेनदार के अधिकारों को अभिव्यक्त रूप से सुरक्षित किए जाने की आवश्यकता नहीं होती, अतः उनके अधिकार किसी भी योजना के अन्तर्गत अप्रभावित बने रहते हैं ।'
>
> गार्नर मोटर लिमिटेड वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब किसी योजना को न्यायालय द्वारा मंजूरी प्रदान की

---

[1] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 1973.

जाती है, तो वह योजना कानूनी क्रियान्वयन की योजना बन जाती है और उस योजना के अन्तर्गत किसी भी पक्ष को उसकी बाध्यताओं से मुक्त नहीं किया जाता ।

14. उच्च न्यायालय को वाद की सुनवाई को स्थगित कर देना चाहिए था और कम्पनी द्वारा शोध्य अंतिम अधिशेष को विनिर्धारित करने के पश्चात् बंधपत्र के खंड 4 के उपबंधों के अनुसार दावे को डिक्री करने के लिए अग्रसर होना चाहिए था ।

15. तद्नुसार, हम विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को उपांतरित करते हैं और घोषणा करते हैं कि कम्पनी के विरुद्ध बैंक के अधिकार योजना द्वारा शासित है जिसको इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा 1956 के कम्पनी मामला संख्या 16 में तारीख 21 मई, 1956 के निर्णय द्वारा मंजूरी प्राप्त है । रंजीत सिंह का दायित्व केवल अंतिम अधिशेष, जो कम्पनी के पक्ष में बैंक के नकद जमा खाता पर शोध्य था, तक सीमित था ।"

28. **ओशी फूड्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **भारतीय स्टेट बैंक**[1] वाले मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय (ग्वालियर न्यायपीठ) के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि जब तक कि न्यायालय का दायित्व विनिर्धारित नहीं हो जाता है, प्रत्याभूतिदाताओं को दायी नहीं ठहराया जा सकता । ऐसे मामलों में, यदि कम्पनी के विरुद्ध डिक्री अभिप्राप्त की गई है, जिसको निष्पादित किया जाना है, तो प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध कार्यवाही को आगे बढ़ाया जा सकता है । इसलिए, ऐसी स्थिति में जहां कोई सम्मिश्र वाद फाइल किया गया है और कम्पनी के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए कम्पनी न्यायालय की अनुज्ञा अपेक्षित है, तो इस निष्कर्ष से नहीं बचा जा सकता कि वाद तब तक आगे अग्रसर नहीं हो सकता जब तक कि कम्पनी न्यायालय की अनुज्ञा अभिप्राप्त न कर ली गई हो ।

29. वर्तमान मामले में, यह दलील दी गई है कि ऋण वसूली अधिकरण आक्षेपित आदेश पारित करते हुए 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के भाग 3 में समाविष्ट उपबंधों, जो 1993 के अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी हैं, को अवेक्षित करने में विफल रहा । यह दलील भी दी गई है कि ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष सम्पूर्ण कार्यवाही संक्षिप्त रूप से इस पृष्ठभूमि में बिना किसी अधिकारिता के है कि जब कार्यवाही 2016 की

---

[1] ए. आई. आर. 1997 (2) एम. पी. एल. जे. 643.

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत पहले ही आरम्भ हो चुकी है और धारा 14 के अधीन ऋणस्थगन पहले ही जारी किया जा चुका है और उक्त कार्यवाहियों में भी पक्ष दिवाला वृत्तिक के समक्ष उपस्थित हो चुके हैं तो मुख्य देनदार के प्रत्याभूतिदाताओं के विरुद्ध आक्षेपित कार्यवाही दूषित है । श्री नवीन सिन्हा द्वारा दी गई दलील को इस आधार पर भी बल मिलता है कि यदि दायित्व अभी भी अनिर्णय की स्थिति में है और उसको निश्चित रूप नहीं दिया गया है, तो ऐसी स्थिति में विभिन्न अधिकारिता वाले प्राधिकारियों के समक्ष दो सामानांतर/पृथक्-पृथक् कार्यवाहियों से यथासंभव बचा जाना चाहिए । ऊपर वर्णित परिस्थितियों में प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान् काउंसेल द्वारा अनुकल्पिक अनुतोष के संबंध में उठाए गए आक्षेपों को मान्य नहीं ठहराया जा सकता और अस्वीकृत किया जाता है ।

30. वे निर्णय जिनका अवलंब प्रत्यर्थी-बैंक की ओर उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री सतीश चतुर्वेदी द्वारा लिया गया, विभेदनीय हैं और वे वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में आकर्षित नहीं होते, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है ।

31. इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि ऊपर वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों, जिनमें 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता और उसके अधीन विरचित विनियमों के अधीन उपबंधित बैंक को उपलब्ध पर्याप्त रक्षोपायों को ध्यान में रखते हुए और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि दायित्व को प्रमुख देनदार या प्रत्याभूतिदाताओं/बंधककर्ताओं के विरुद्ध अभी तक स्थिरीकृत नहीं किया गया है, तो वे कार्यवाहियां जो इलाहाबाद स्थित ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष लम्बित हैं, चल नहीं सकती और निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया को अंतिमता प्रदान किए जाने तक या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा धारा 31 की उपधारा (1) के अधीन समाधान योजना का अनुमोदन किए जाने तक या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा धारा 33 के अधीन निगमित देनदार का परिसमापन किए जाने का आदेश पारित किए जाने तक, जैसा भी मामला हो, स्थगित की जाती हैं ।

32. पूर्वोक्त निर्देशों/मताभिव्यक्तियों के साथ दोनों रिट याचिकाएं निस्तारित की जाती हैं ।

रिट याचिकाओं का निस्तारण करते हुए ।

अवि.

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

श्रीमती पूनम गुप्ता और अन्य

तारीख 2 जून, 2017

न्यायमूर्ति सर्वेश कुमार गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 173 – प्रश्नगत यान द्वारा दुर्घटना – यान के स्वामी का ही यान का चालक होना – यान चालन के दौरान चालक के पास वैध चालन अनुज्ञप्ति का होना – दुर्घटना दावा – यान का तकनीकी त्रुटि के कारण दुर्घटनाग्रस्त होना – यान स्वामी/बीमा कम्पनी का दायित्व – **यदि यह साबित हो जाता है कि प्रश्नगत यान के चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण दुर्घटना घटित हुई और चालक के पास वैध अनुज्ञप्ति थी तथा दुर्घटना के परिणामस्वरूप आहत व्यक्ति की मृत्यु हो गई तो न्यायालय बीमा कम्पनी को प्रतिकर देने के लिए दायी ठहरा सकता है परन्तु यदि झूठ साक्ष्य के आधार पर झूठा दावा किया जाता है तो बीमा कंपनी यान के स्वामी से वसूली के लिए कार्रवाई कर सकती है ।**

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि दुर्घटना भूमा निकेतन अस्पताल के निकट रुड़की-हरिद्वार रोड पर तारीख 18 अगस्त, 2014 को लगभग 5.30 बजे घटित हुई थी । श्री विपिन कुमार गुप्ता आयु लगभग 45-46 वर्ष, जो स्कूटर संख्या यू के 08 वाई 1426 द्वारा अपने पुत्र विपुल गुप्ता आयु लगभग 18 वर्ष के साथ जा रहा था, तभी एक बस जिसका रजिस्ट्रेशन संख्या आर जे 19 पी ए 4687 था, ने सामने से आकर पिता और पुत्र को टक्कर मार दी और उन्हें बहुत सी क्षतियां पहुंचीं और उन दोनों की दुर्घटना के तुरन्त पश्चात् दुर्घटना के कारण कारित हुई क्षतियों के कारण दुर्घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई । हरिद्वार के जवाहर पुलिस स्टेशन, जिसको घटना स्थल के संबंध में क्षेत्रीय अधिकारिता प्राप्त थी, में रात्रि लगभग 11.00 बजे अपराध संख्या 318/14 के अंतर्गत धारा 279 और 304क के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । दावा संख्या (मृतक विपिन कुमार गुप्ता की विधवा श्रीमती पूनम गुप्ता ने अपने पुत्र अक्षत गुप्ता, आयु 17 वर्ष और मृतक की माता आयु 65 वर्ष के साथ 10,06,00,000/-

रुपए (मात्र दस करोड़ छह लाख रुपए) की धनराशि के प्रतिकर का दावा करते हुए 2014 का मोटर दुर्घटना दावा संख्या 133 फाइल किया जिसके विरुद्ध विद्वान् अधिकरण ने 87,40,000/- रुपए (मात्र सतासी लाख चालीस हजार रुपए) की धनराशि का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया । इस प्रतिकर के अधिनिर्णय को 2016 के ए. ओ. संख्या 473 फाइल करके चुनौती दी गई है, और इस अपील को सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाते समय इस न्यायालय ने बीमा कंपनी को 25,00,000/- रुपए (मात्र पच्चीस लाख रुपए) की राशि जमा करने का निर्देश दिया जिसमें से 10,00,000/- (मात्र दस लाख रुपए) दावेदारों को उनके अपने-अपने हिस्से के अनुसार निर्गत किए जा चुके हैं । चूंकि, युवावस्था की ओर अग्रसर पुत्र विपुल गुप्ता ने दुर्घटना में अपनी जान गवाई थी इसलिए, 2014 दावा याचिका संख्या 134 में 33,50,000/- रुपए (मात्र तैंतीस लाख पचास हजार रुपए) की धनराशि के प्रतिकर का दावा करते हुए अधिकरण के समक्ष फाइल की गई जिसके संबंध में विद्वान् अधिकरण ने 2,59,000/- रुपए (मात्र दो लाख उनसठ हजार रुपए) अधिनिर्णीत किए हैं । इससे व्यथित होकर, बीमा कंपनी ने 2016 की वर्तमान ए. ओ. संख्या 474 फाइल की और इस अपील के ग्रहण के समय 50 प्रतिशत रकम जमा करने के लिए निर्देशित किया गया जो बीमाकर्ता अपीलार्थी द्वारा जमा किया गया और जिसमें से कोई भी राशि दावेदारों को निर्गत नहीं की गई है । इसके विपरीत, दावेदारों ने 2014 के मोटर दुर्घटना दावा संख्या 133 में पारित अधिनिर्णय की मात्रा से व्यथित होकर उसे बढ़ाने के लिए 2016 अपील संख्या 518 फाइल की है । न्यायालय द्वारा, दावा याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने, अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता सुश्री रजनी सुपयाल अधिवक्ता ने की, को सुना और दावेदारों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री निखिल सिंघल को सुना । यह प्रकट होता है कि दुर्घटना, बस चालक के चालन अनुज्ञप्ति की विधिमान्यता को और सुसंगत तारीख को बस का बीमा कवर विवादित नहीं है । यद्यपि बीमाकृत ने यह अभिवाक् किया है कि एक्टिवा स्कूटर युवा मास्टर विपुल गुप्ता द्वारा चलाई जा रही थी और उसके पिता विपिन कुमार गुप्ता द्वारा नहीं चलाई जा रही थी परन्तु इस तथ्य को न्यायालय के समाधान के लिए साबित नहीं किया गया । पक्षकारों के बीच प्रमुख विवाद अधिनिर्णय राशि की मात्रा के संबंध में है । यह अभिवाक् किया गया है कि मृतक 40 वर्ष की आयु का युवक था और इलेक्ट्रिक इंजीनियर के रूप

नियोजित था और मुम्बई में किसी कंपनी में ज्येष्ठ प्रबंधक के रूप में कार्यरत था और उसकी वार्षिक आय 17,14,418/- रुपए थी जबकि अन्वेषक की रिपोर्ट से यह प्रकट हो गया है कि दुर्घटना के सुसंगत समय पर वह ऐसी किसी कंपनी में नियोजित नहीं था । तथापि, अन्वेषक की रिपोर्ट में यह भी स्वीकार किया गया है कि उसने तारीख 3 नवम्बर, 2008 से 2 अप्रैल, 2014 के दौरान मुम्बई में स्थित श्रीयांत कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड नामक कंपनी में कार्य किया था । यह उल्लेख किया जाना पुनः प्रासंगिक होगा कि अवसर मिलने के बावजूद, बीमा कंपनी ने अपने लिखित अभिकथन में इस तथ्य का अभिवाक् करने में चूक की ताकि दावेदारों के विद्वान् काउंसेल अधिकरण के समक्ष अन्वेषक की प्रतिपरीक्षा का अवसर प्राप्त कर सके यदि बीमाकृत द्वारा इस रिपोर्ट को साबित करने के लिए प्रस्तुत किया जाए । तथापि, इस अन्वेषक रिपोर्ट की सत्यता पर विश्वास करते हुए, जिस तथ्य पर विचार किया जाना चाहिए वह यह है कि क्या वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल, 2012 से 31 मार्च, 2013 और निर्धारण वर्ष 2013-2014 से संबंधित प्ररूप सं. 16 (कागज संख्या 51ग) पर उपलब्ध है और वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल, 2013 से 31 मार्च, 2014 से संबंधित प्ररूप संख्या 16 (कागज संख्या 52ग); निर्धारण वर्ष 1 अप्रैल, 2014 से 31 मार्च, 2015 भी अभिलेख पर उपलब्ध है और मेरे विचार से प्ररूप संख्या 16 एक विश्वसनीय दस्तावेज है, जो किसी नियोजक द्वारा किसी कर्मचारी के पक्ष में जारी किया जाता है जिसमें सुसंगत वर्ष में उसकी संपूर्ण आय को प्रकाशित करता है । दूसरे बहुत से कारणोंवश दी गई दलीलें केवल मृतक के जीवनकाल के दौरान सुसंगत होतीं । विद्वान् अधिकरण ने वेतन से वसूल करने योग्य आयकर काटने के पश्चात् काटे जाने योग्य आयकर को काटे जाने के पश्चात् 10,77,015/- रुपए की आय का आधार लिया है । इस आय में से एक तिहाई रकम को उसके वैयक्तिक खर्चों के लिए कम करके सही किया गया है अतः वह दो तिहाई आय के रूप में 7,18,010/- रुपए की धनराशि अपने पूरे परिवार को सुखी रखने के लिए बचा सकता था । दुर्घटना का संपूर्ण उत्तरदायित्व बस के चालक पर डाला गया है । बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल इस कारणवश उत्तेजित हुए और निवेदन किया कि यद्यपि मृतक स्कूटर अपनी बाईं ओर चला रहे थे और सामने से आ रही बस ने दुर्घटना कारित करते हुए अपनी बाएं तरफ से थोड़ा भटक गई थी परन्तु मामला मात्र यही नहीं जब स्कूटर सवार दोनों व्यक्तियों को बस द्वारा पूर्णतया कुचल दिया गया । स्कूटर चालक के

विवेकानुसार सावधानी, बुद्धि और आकलन से, दुर्घटना को टाला जा सकता था । अतः, बस चालक पर पूर्ण दायित्व डाला जाना अनुचित होगा । मेरे विचार से इस तर्क में कुल बल किन्तु तत्समय बड़ी जिम्मेदारी और चूक बस चालक की प्रतीत होती है । मैं न्यायिक बुद्धिमत्ता के अनुसार, 20 प्रतिशत उत्तरदायित्व स्कूटर चालक श्री विपिन कुमार गुप्ता पर होने वाली दुर्घटना का अनुमान लगाने में विवेक की कमी के कारण अधिरोपित करना चाहूंगा । इसमें यह पुनः स्पष्ट किया जाता है कि ऐसे मामलों में प्रतिकर का अनुमान लगाने का फार्मूला संगणित या परिभाषित नहीं होती है क्योंकि निजी कंपनियों में आजीविका और जीवन की अवधि सदैव अनिश्चित होती है । इसलिए, अत्यधिक रकम वाले अधिनिर्णय के मामले में इस कारक पर भी विचार किया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय और अनेक दूसरे उच्च न्यायालयों ने बार-बार मत व्यक्त किया है कि दुर्घटना में मृतक की मृत्यु शोकाकुल परिवार के लिए अप्रत्याशित लाभ या उदार दान रूप में नहीं जाना चाहिए । निस्संदेह रूप से, यह अंतहीन दुख का मामला है जिसका सामना कुटुंब का भरणपोषण करने वाले एक मात्र व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् करना होता है परन्तु ऐसे मामलों में प्रतिकर उचित और समुचित होना चाहिए ताकि इससे शोकग्रस्त कुटुंब को गरीबी और भुखमरी से बचाने के लिए युक्तिसंगत रूप में स्वीकार किया जा सके । ऐसे कुटुंब के जीवन स्तर को भी विचार में लिया जाता है तो भी मेरे विचार से अधिनिर्णय में उल्लिखित रकम का कम से कम 20 प्रतिशत स्कूटर चलाते समय मृतक के 20 प्रतिशत उत्तरदायित्व को कम करके विचार किया जाना चाहिए । न्यायालय इस राशि जिसे अधिकरण द्वारा 86,16,120/- रुपए के प्रतिकर के अतिरिक्त मंजूर किया गया है, में परिवर्तन करने का इच्छुक नहीं है परन्तु 86,16,120/- रुपए को 20 प्रतिशत के आधार पर कम किया जाना चाहिए और तत्पश्चात् प्रतिकर संगणित किया जाना चाहिए । इसे दावेदारों के लिए अलग-अलग हिस्सों को ध्यान में रखते हुए अधिनिर्णीत करना होगा । इन बातों को ध्यान में रखते हुए 2016 की अपील संख्या 473 आंशिक रूप से मंजूर की जाती है । प्रतिकर की संपूर्ण धनराशि का संगणना, याचिका फाइल किए जाने की तारीख से संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक साधारण ब्याज संगणित किए जाने के पश्चात् किया जाना होगा । अब यह न्यायालय 2016 की अपील संख्या 474 पर विचार करता है मेरे विचार से 18 वर्ष के आकर्षक युवा लड़के ने इस घातक दुर्घटना में अपनी जान गवाई है अतः 2,59,000/- रुपए की राशि के

प्रतिकर का अधिनिर्णय अपर्याप्त है । चूंकि जैसाकि पहले ही कहा गया है कि ऐसे मामलों में प्रतिकर के संगणन का कोई फार्मूला नहीं है किन्तु कुटुंब की संपूर्ण स्थिति उनके जीवन स्तर, हैसियत और इस उभरते हुए युवा लड़के जो वयस्कता प्राप्त करने के कगार पर था, के भविष्य की संभावना को ध्यान में रखते हुए मेरे विचार से कम से कम 12,00,000/- रुपए मंजूर किए जाने चाहिए । इस अपील में कोई बल नहीं है । इसलिए इसे खारिज किया जाता है और 2,59,000/- रुपए के अधिनिर्णय को बढ़ाकर 12,00,000/- रुपए (बारह लाख रुपए) की राशि का अधिनिर्णय मंजूर किया जाता है । जो 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से केवल उसकी माता श्रीमती पूनम गुप्ता को ही संदाय होगा । अब मैं 2016 की अपील संख्या 518 पर निष्कर्ष देता हूं जिसे श्रीमती पूनम गुप्ता द्वारा अपने पति श्री विपिन कुमार गुप्ता की मृत्यु के कारण अधिनिर्णय में उल्लिखित रकम को बढ़ाए जाने के लिए फाइल किया गया है । (पैरा 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13 और 14)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 के आदेश संख्या 473 (साथ में 2016 के आदेश संख्या 474 और 518 से उद्भूत अपील).

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री वी. के. कोहली और साथ में आई. पी. कोहली और सुश्री रजनी सुपयाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री निखिल सिंघल

न्यायमूर्ति सर्वेश कुमार गुप्ता – उपरोक्त शीर्षक के अंतर्गत फाइल की गई समस्त अपीलें एक दुर्घटना से संबंधित हैं, इसलिए उनका न्यायनिर्णय एक साथ किया जा रहा है जो निम्नानुसार है ।

2. आरंभ में, उल्लेख किया जाना सुसंगत होगा कि बीमा कंपनी के ज्येष्ठ मंडल प्रबंधक के शपथपत्र के साथ समर्थित बीमा अन्वेषक की रिपोर्ट फाइल किए जाने के लिए बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत किया गया प्रकीर्ण आवेदन (आई. ए. संख्या 5484/2016) एतद्द्वारा अभिलेख पर स्वीकृत किया जाता है और इस पर विचार किया जाएगा । इसके विपरीत मृतक के आश्रितों द्वारा अधिनिर्णय में उल्लिखित रकम बढ़ाए जाने के लिए

फाइल की गई अपनी अपील में 20 दिनों का विलंब माफ किए जाने हेतु फाइल किया गया आवेदन (सी.एल.एम.ए. संख्या 10099/2016) एतद्द्वारा विचारणार्थ मंजूर किया जाता है और तद्नुसार विलंब माफ किया जाता है ।

3. दुर्घटना भूमा निकेतन अस्पताल के निकट रुड़की-हरिद्वार रोड पर तारीख 18 अगस्त, 2014 को लगभग 5.30 बजे घटित हुई थी । श्री विपिन कुमार गुप्ता आयु लगभग 45-46 वर्ष थी, जो स्कूटर संख्या यू के 08 वाई 1426 द्वारा अपने पुत्र विपुल गुप्ता आयु लगभग 18 वर्ष के साथ जा रहा था, तभी एक बस जिसका रजिस्ट्रेशन संख्या आर जे 19 पी ए 4687 था, ने सामने से आकर पिता और पुत्र को टक्कर मार दी और उन्हें बहुत सी क्षतियां पहुंची और उन दोनों की दुर्घटना के तुरन्त पश्चात् दुर्घटना के कारण कारित हुई क्षतियों के कारण दुर्घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई । हरिद्वार के जवाहर पुलिस स्टेशन, जिसको घटनास्थल के संबंध में क्षेत्रीय अधिकारिता प्राप्त थी, में रात्रि लगभग 11.00 बजे अपराध संख्या 318/14 के अंतर्गत धारा 279 और 304क के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई ।

4. दावा संख्या (मृतक विपिन कुमार गुप्ता की विधवा श्रीमती पूनम गुप्ता ने अपने पुत्र अक्षत गुप्ता, आयु 17 वर्ष और मृतक की माता आयु 65 वर्ष के साथ 10,06,00,000/- रुपए (मात्र दस करोड़ छह लाख रुपए) की धनराशि के प्रतिकर का दावा करते हुए 2014 का मोटर दुर्घटना दावा संख्या 133 फाइल किया जिसके विरुद्ध विद्वान् अधिकरण ने 87,40,000/- रुपए (मात्र सतासी लाख चालीस हजार रुपए) की धनराशि का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया । इस प्रतिकर के अधिनिर्णय को 2016 के ए. ओ. संख्या 473 फाइल करके चुनौती दी गई है, और इस अपील को सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाते समय इस न्यायालय ने बीमा कंपनी को 25,00,000/- रुपए (मात्र पच्चीस लाख रुपए) की राशि जमा करने का निर्देश दिया जिसमें से 10,00,000/-(मात्र दस लाख रुपए) दावेदारों को उनके अपने-अपने हिस्से के अनुसार निर्गत किए जा चुके हैं ।

5. चूंकि, युवावस्था की ओर अग्रसर पुत्र विपुल गुप्ता ने दुर्घटना में अपनी जान गवाई थी इसलिए, 2014 दावा याचिका संख्या 134 33,50,000/- रुपए (मात्र तैंतीस लाख पचास हजार रुपए) की धनराशि के प्रतिकर का दावा करते हुए अधिकरण के समक्ष फाइल की गई जिसके संबंध में विद्वान् अधिकरण ने 2,59,000/- रुपए (मात्र दो लाख उनसठ

हजार रुपए) अधिनिर्णीत किए हैं । इससे व्यथित होकर, बीमा कंपनी ने 2016 की वर्तमान ए. ओ. संख्या 474 फाइल की और इस अपील के ग्रहण के समय 50 प्रतिशत रकम जमा करने के लिए निर्देशित किया गया जो बीमाकर्ता अपीलार्थी द्वारा जमा किया गया और जिसमें से कोई भी राशि दावेदारों को निर्गत नहीं की गई है ।

6. इसके विपरीत, दावेदारों ने 2014 के मोटर दुर्घटना दावा संख्या 133 में पारित अधिनिर्णय की मात्रा से व्यथित होकर उसे बढ़ाने के लिए 2016 अपील संख्या 518 फाइल की है ।

7. इस न्यायालय ने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता सुश्री रजनी सुपयाल अधिवक्ता ने की, को सुना और दावेदारों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री निखिल सिंघल को सुना ।

8. यह प्रकट होता है कि दुर्घटना, बस चालक के चालन अनुज्ञप्ति की विधिमान्यता को और सुसंगत तारीख को बस का बीमा कवर विवादित नहीं है । यद्यपि बीमाकृत ने यह अभिवाक् किया है कि एक्टिवा स्कूटर युवा मास्टर विपुल गुप्ता द्वारा चलाई जा रही थी और उसके पिता विपिन कुमार गुप्ता द्वारा नहीं चलाई जा रही थी परन्तु इस तथ्य को न्यायालय के समाधान के लिए साबित नहीं किया गया । पक्षकारों के बीच प्रमुख विवाद अधिनिर्णय राशि की मात्रा के संबंध में है । यह अभिवाक् किया गया है कि मृतक 40 वर्ष की आयु का युवक था और इलेक्ट्रिक इंजीनियर के रूप में नियोजित था और मुम्बई में किसी कंपनी में ज्येष्ठ प्रबंधक के रूप में कार्यरत था और उसकी वार्षिक आय 17,14,418/- रुपए थी जबकि अन्वेषक की रिपोर्ट से यह प्रकट हो गया है कि दुर्घटना के सुसंगत समय पर वह ऐसी किसी कंपनी में नियोजित नहीं था । तथापि, अन्वेषक की रिपोर्ट में यह भी स्वीकार किया गया है कि उसने तारीख 3 नवम्बर, 2008 से 2 अप्रैल, 2014 के दौरान मुम्बई में स्थित श्रीयांत कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड नामक कंपनी में कार्य किया था । यह उल्लेख किया जाना पुनः प्रासंगिक होगा कि अवसर मिलने के बावजूद, बीमा कंपनी ने अपने लिखित अभिकथन में इस तथ्य का अभिवाक् करने में चूक की ताकि दावेदारों के विद्वान् काउंसेल अधिकरण के समक्ष अन्वेषक की प्रतिपरीक्षा का अवसर प्राप्त कर सके यदि बीमाकृत द्वारा इस रिपोर्ट को साबित करने के लिए प्रस्तुत किया जाए ।

9. तथापि, इस अन्वेषक रिपोर्ट की सत्यता पर विश्वास करते हुए, जिस तथ्य पर विचार किया जाना चाहिए वह यह है कि क्या वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल, 2012 से 31 मार्च, 2013 और निर्धारण वर्ष 2013-2014 से संबंधित प्ररूप सं. 16 (कागज संख्या 51ग) पर उपलब्ध है और वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल, 2013 से 31 मार्च, 2014 से संबंधित प्ररूप संख्या 16 (कागज संख्या 52ग); निर्धारण वर्ष 1 अप्रैल, 2014 से 31 मार्च, 2015 भी अभिलेख पर उपलब्ध है और मेरे विचार से प्ररूप संख्या 16 एक विश्वसनीय दस्तावेज है, जो किसी नियोजक द्वारा किसी कर्मचारी के पक्ष में जारी किया जाता है जिसमें सुसंगत वर्ष में उसकी संपूर्ण आय को प्रकाशित करता है । दूसरे बहुत से कारणोंवश दी गई दलीलें केवल मृतक के जीवनकाल के दौरान सुसंगत होती । विद्वान् अधिकरण ने वेतन से वसूल करने योग्य आयकर काटने के पश्चात काटे जाने योग्य आयकर को काटे जाने के पश्चात् 10,77,015/- रुपए की आय का आधार लिया है । इस आय में से एक तिहाई रकम को उसके वैयक्तिक खर्चों के लिए कम करके सही किया गया है अतः वह दो तिहाई आय के रूप में 7,18,010/- रुपए की धनराशि अपने पूरे परिवार को सुखी रखने के लिए बचा सकता था । दुर्घटना का संपूर्ण उत्तरदायित्व बस के चालक पर डाला गया है ।

10. बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल इस कारणवश उत्तेजित हुए और निवेदन किया कि यद्यपि मृतक स्कूटर अपनी बाएं ओर चला रहे थे और सामने से आ रही बस ने दुर्घटना कारित करते हुए अपनी बाएं तरफ से थोड़ा भटक गई थी परन्तु मामला मात्र यही नहीं जब स्कूटर सवार दोनों व्यक्तियों को बस द्वारा पूर्णतया कुचल दिया गया । स्कूटर चालक के विवेकानुसार सावधानी, बुद्धि और आकलन से, दुर्घटना को टाला जा सकता था । अतः, बस चालक पर पूर्ण दायित्व डाला जाना अनुचित होगा । मेरे विचार से इस तर्क में कुछ बल है किन्तु तत्समय बड़ी जिम्मेदारी और चूक बस चालक की प्रतीत होती है । मैं न्यायिक बुद्धिमत्ता के अनुसार, 20 प्रतिशत उत्तरदायित्व स्कूटर चालक श्री विपिन कुमार गुप्ता पर होने वाली दुर्घटना का अनुमान लगाने में विवेक की कमी के कारण अधिरोपित करना चाहूंगा ।

11. इसमें यह पुनः स्पष्ट किया जाता है कि ऐसे मामलों में प्रतिकर का अनुमान लगाने का फार्मूला संगणित या परिभाषित नहीं होता है क्योंकि निजी कंपनियों में आजीविका और जीवन की अवधि सदैव अनिश्चित होती है । इसलिए, अत्यधिक रकम वाले अधिनिर्णय के मामले में इस कारक पर

भी विचार किया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय और अनेक दूसरे उच्च न्यायालयों ने बार-बार मत व्यक्त किया है कि दुर्घटना में मृतक की मृत्यु शोकाकुल परिवार के लिए अप्रत्याशित लाभ या उदार दान रूप में नहीं जाना चाहिए । निस्संदेह रूप से, यह अंतहीन दुख का मामला है जिसका सामना कुटुंब का भरणपोषण करने वाले एक मात्र व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् करना होता है परन्तु ऐसे मामलों में प्रतिकर उचित और समुचित होना चाहिए ताकि इससे शोकग्रस्त कुटुंब को गरीबी और भुखमरी से बचाने के लिए युक्तिसंगत रूप में स्वीकार किया जा सके । ऐसे कुटुंब के जीवन स्तर को भी विचार में लिया जाता है तो भी मेरे विचार से अधिनिर्णय में उल्लिखित रकम का कम से कम 20 प्रतिशत स्कूटर चलाते समय मृतक के 20 प्रतिशत उत्तरदायित्व को कम करके विचार किया जाना चाहिए ।

12. न्यायालय इस राशि जिसे अधिकरण द्वारा 86,16,120/- रुपए के प्रतिकर के अतिरिक्त मंजूर किया गया है, में परिवर्तन करने का इच्छुक नहीं है परन्तु 86,16,120/- रुपए को 20 प्रतिशत के आधार पर कम किया जाना चाहिए और तत्पश्चात् प्रतिकर संगणित किया जाना चाहिए । इसे दावेदारों के लिए अलग-अलग हिस्सों को ध्यान में रखते हुए अधिनिर्णीत करना होगा । इन बातों को ध्यान में रखते हुए 2016 की अपील संख्या 473 आंशिक रूप से मंजूर की जाती है । प्रतिकर की संपूर्ण धनराशि का संगणन याचिका फाइल किए जाने की तारीख से संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक साधारण ब्याज संगणित किए जाने के पश्चात् किया जाना होगा ।

13. अब यह न्यायालय 2016 की अपील संख्या 474 पर विचार करता है मेरे विचार से 18 वर्ष के आकर्षक युवा लड़के ने इस घातक दुर्घटना में अपनी जान गवाई है अतः 2,59,000/- रुपए की राशि के प्रतिकर का अधिनिर्णय अपर्याप्त है चूंकि जैसाकि पहले ही कहा गया है कि ऐसे मामलों में प्रतिकर के संगणन का कोई फार्मूला नहीं है किन्तु कुटुंब की संपूर्ण स्थिति उनके जीवन स्तर, हैसियत और इस उभरते हुए युवा लड़के जो वयस्कता प्राप्त करने के कगार पर था, के भविष्य की संभावना को ध्यान में रखते हुए मेरे विचार से कम से कम 12,00,000/- रुपए मंजूर किए जाने चाहिए । इस अपील में कोई बल नहीं है । इसलिए इसे खारिज किया जाता है और 2,59,000/- रुपए के अधिनिर्णय को बढ़ाकर 12,00,000/- रुपए (बारह लाख रुपए) की राशि का अधिनिर्णय

मंजूर किया जाता है । जो 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से केवल उसकी माता श्रीमती पूनम गुप्ता को ही संदाय होगा ।

14. अब मैं 2016 की अपील संख्या 518 पर निष्कर्ष देता हूं जिसे श्रीमती पूनम गुप्ता द्वारा अपने पति श्री विपिन कुमार गुप्ता की मृत्यु के कारण अधिनिर्णय में उल्लिखित रकम को बढ़ाए जाने के लिए फाइल किया गया है ।

15. जैसा कि दोनों अपीलों में ऊपर है, मैं समझता हूं कि इस अपील को मंजूर किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है और यह खारिज की जाती है ।

निचले न्यायालय का अभिलेख वापस भेजा जाए ।

याचिका खारिज की गई

मही./अवि.

(2018) 2 सि. नि. प. 64 **उत्तराखंड**

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

श्रीमती बीखा देवी और अन्य

तारीख 9 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति लोक पाल सिंह

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – अपील – धारा 173 – प्रश्नगत यान द्वारा दुर्घटना – यान का स्वामी ही यान का चालक होना – यान चालन के दौरान चालक के पास वैध चालन अनुज्ञप्ति का होना – दुर्घटना दावा – यान का तकनीकी त्रुटि के कारण दुर्घटनाग्रस्त होना – यान स्वामी/बीमा कम्पनी का दायित्व – यदि यह साबित हो जाता है कि प्रश्नगत यान के चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण दुर्घटना घटित हुई थी और चालक के पास वैध अनुज्ञप्ति थी तथा दुर्घटना के परिणामस्वरूप आहत व्यक्ति की मृत्यु हो गई तब न्यायालय बीमा कम्पनी को प्रतिकर देने के लिए दायी ठहरा सकता है, तथापि, बीमा कम्पनी यान के स्वामी से वसूली के लिए

कार्रवाई कर सकती है ।

वर्तमान मामले में संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि 1988 के मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन यह अपील 2017 को मोटर दुर्घटना दावा याचिका से उद्भूत मामला सं. 14 में टिहरी गढ़वाल के द्वारा मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/जिला न्यायाधीश, तारीख 25 नवम्बर, 2017 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा दावेदारों/प्रत्यर्थियों के पक्ष में और अपीलार्थी के विरुद्ध 2,00,000/- रुपए का प्रतिकर याचिका संस्थित किए जाने की तारीख से 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज सहित संदत्त किए जाने का अधिनिर्णय पारित किया गया है । मृतक मंगल सिंह यान बोलेरो संख्या यू के 09 टी ए 0468 का स्वामी और चालक था । तारीख 19 जनवरी, 2017 को 8.30 बजे वह धारकोट स्थित थीम कंसलटेंसी से यान संख्या यू के 09 टी ए 0468 द्वारा वापस आ रहा था । यान किसी तकनीकी त्रुटि के कारण खंभीखाल मोड़ चौधर स्थान पर 600 मीटर गहरी खाई में जा गिरा जिसके कारण मृतक को क्षतियां पहुंची और उसकी दुर्घटना में पहुंची क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । दावेदारों ने यह प्रकथन करते हुए दावा याचिका फाइल की कि मृतक यान का चालक और स्वामी था और वह 36,000/- रुपए प्रतिमास कमाता था । दुर्घटना के समय उसकी आयु लगभग 35 वर्ष थी । न्यायालय द्वारा, अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने, पक्षों को सुनने और उनके द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचारोपरांत सभी विवाद्यकों का निर्णय दावेदारों के पक्ष में किया और तारीख 25 नवम्बर, 2017 के अपने निर्णय और अधिनिर्णय द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध 2,00,000/- रुपए के प्रतिकर का अधिनिर्णय दिया । अधिकरण ने विवाद्यक संख्या 1 पर निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए, बीमा आवरण टिप्पण पर पृथक् खंड का परिशीलन करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि यान का स्वामी-चालक व्यक्तिगत दुर्घटना द्वारा आच्छादित था तथापि, यह (व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा)सीमित था और बीमाकर्ता का संपूर्ण दायित्व बीमा की किसी एक अवधि के दौरान 2 लाख रुपए की राशि से अधिक नहीं होगा और अधिकरण ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम झूमा शाह और अन्य वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए अभिनिर्धारित किया कि दावा याचिका पोषणीय है । विवाद्यक संख्या 3 पर अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि यान दुर्घटना की तारीख को सभी दस्तावेजों अर्थात् रजिस्ट्रेशन,

फिटनेस और परमिट के साथ चलाया जा रहा था और दुर्घटना की तारीख पर चालक के पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति भी थी । प्रतिकर के संबंध में विवाद्यक संख्या 4 पर, अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि यान 2,00,000/- रुपए तक के सीमित दायित्व के द्वारा आच्छादित था और यान को समस्त विधिमान्य कागजों के साथ चलाया जा रहा था इसलिए, दावेदार 2,00,000/- रुपए के प्रतिकर के हकदार हैं । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि बीमाकृत/स्वामी ने केवल संवैधानिक चालक के संबंध में प्रीमियम का संदाय किया था व्यक्तिगत दुर्घटना आच्छादन पालिसी के अधीन यान के बीमाकृत/स्वामी द्वारा कोई बीमा आच्छादन नहीं लिया गया था । यह दलील भी दी कि यद्यपि मृतक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी और सुसंगत तारीख और समय पर सुसंगत कागज भी विधिमान्य थे, परन्तु चूंकि वह पालिसी के अधीन व्यक्तिगत रूप से बीमाकृत नहीं था, बीमा कंपनी केवल 2,00,000/- रुपए के प्रतिकर के संदाय की दायी थी, यदि सवेतन चालक दुर्घटना में मारा जाता । स्वीकृततः, मृतक जो यान का स्वामी और चालक था । उसके पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी और दुर्घटना के समय उसके पास सभी विधिमान्य कागज थे और बीमा पालिसी भी प्रभावी थी । मृतक अपने स्वामित्वाधीन यान को स्वयं चला रहा था और यान किसी सवेतनिक चालक द्वारा नहीं चलाया जा रहा था । इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि यान कौन चला रहा था, चाहे वह यान का स्वामी था या कोई सवेतनिक चालक, चूंकि चालक के लिए प्रीमियम का संदाय द्वारा बीमाकृत किया गया था और किसी विशिष्ट व्यक्ति के लिए नहीं । अतः, अधिकरण ने दावेदारों को 2,00,000/- रुपए का प्रतिकर प्रदान करके न्यायसंगत कार्य किया है । पूर्वोक्त को ध्यान में रखते, इस न्यायालय का विचार है कि विवाद्यक संख्या 1 के संबंध में विद्वान् अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष में कोई मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता । जहां तक अन्य विवाद्यकों पर अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों का संबंध है, इस न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण ने साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के पश्चात् ही निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं और इस प्रकार इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । परिणामस्वरूप, अपील गुणागुण से रहित है और इसे शुरुआत में ही खारिज किया जाता है । (पैरा 7, 8, 9, 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 के आदेश से उद्भूत अपील सं. 13.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से　　　श्री पंकज पुरोहित

प्रत्यर्थियों की ओर से　　　कोई नहीं

न्यायमूर्ति लोक पाल सिंह – 1988 के मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन यह अपील 2017 को मोटर दुर्घटना दावा याचिका से उद्भूत मामला सं. 14 में टिहरी गढ़वाल के द्वारा मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/जिला न्यायाधीश, तारीख 25 नवम्बर, 2017 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा दावेदारों/प्रत्यर्थियों के पक्ष में और अपीलार्थी के विरुद्ध 2,00,000/- रुपए का प्रतिकर याचिका संस्थित किए जाने की तारीख से 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज सहित संदत्त किए जाने का अधिनिर्णय पारित किया गया है ।

2. याचिका के सुनवाई के प्रयोजनार्थ ग्रहण पर सुनवाई किए जाने के पश्चात्, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल इस बात पर जोर दिया है कि अंतरिम अनुतोष के लिए आवेदन फाइल किया गया है और यदि न्यायालय कोई अंतरित आदेश प्राप्त करने के लिए इच्छुक नहीं है तो अपील फाइल करने का प्रयोजन विफल हो जाएगा और ऐसी स्थिति में, न्यायालय ग्रहण के ही प्रक्रम पर अपील का विनिश्चय कर दें । इन परिस्थितियों में, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की सहमति से इस अपील को आज ही ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर अंतिम रूप से सुना जा रहा है ।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतक मंगल सिंह यान बोलेरो संख्या यू के 09 टी ए 0468 का स्वामी और चालक था । तारीख 19 जनवरी, 2017 को 8.30 बजे वह धारकोट स्थित थीम कंसलटेंसी से यान संख्या यू के 09 टी ए 0468 द्वारा वापस आ रहा था । यान किसी तकनीकी त्रुटि के कारण खंभीखाल मोड़ चौधर स्थान पर 600 मीटर गहरी खाई में जा गिरा जिसके कारण मृतक को क्षतियां पहुंची और उसकी दुर्घटना में पहुंची क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । दावेदारों ने यह प्रकथन करते हुए दावा याचिका फाइल की कि मृतक यान का चालक और स्वामी था और वह 36,000/- रुपए प्रतिमास कमाता था । दुर्घटना के समय उसकी आयु लगभग 35 वर्ष थी ।

4. अपीलार्थी/यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने अपना लिखित अभिकथन फाइल किया और दावा याचिका के सभी प्रकथनों से

इनकार किया । प्रारंभिक आक्षेप में, यह कथन किया कि यान का चालक-स्वामी बीमाकृत नहीं था और स्वामी-चालक की ओर से किसी प्रीमियम का संदाय नहीं किया और इस प्रकार मृतक चालक-स्वामी को प्रतिकर दिलाए जाने के लिए फाइल की गई याचिका पोषणीय नहीं है । बीमा कंपनी का यान के स्वामी को प्रतिकर का संदाय करने का कोई दायित्व नहीं है इसलिए यान का स्वामी प्रतिकर के लिए हकदार नहीं है । अतिरिक्त अभिवाक् में, यह कथन किया गया कि दुर्घटना के समय यान के स्वामी के पास विधिमान्य रजिस्ट्रेशन, परमिट, फिटनेस और बीमा पालिसी नहीं थी, यान के चालक के पास दुर्घटना के समय पर विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । यह दलील दी गई है कि यान के स्वामी ने बीमा पालिसी की नियमों और शर्तों का उल्लंघन किया इसलिए, बीमा कंपनी के विरुद्ध फाइल की गई दावा याचिका खारिज किए जाने योग्य है ।

5. इस याचिका में पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

(i) क्या दावा याचिका पोषणीय है, जैसाकि विपक्षी/बीमा कंपनी द्वारा लिखित अभिकथन के पैरा संख्या 1 और 2 है ? यदि हां, तो इसके प्रभाव हैं ?

(ii) क्या मृतक मंगल सिंह जो यान संख्या यू के 09 टी ए 0468 का स्वामी और चालक था, की मृत्यु दुर्घटना, जो यान में तकनीकी विफलता के कारण तारीख 19 जनवरी, 2017 को रात्रि 8.30 बजे अभिकथित रूप से घटित हुई, में पहुंची क्षतियों के कारण हुई ?

(iii) क्या दुर्घटना के समय यान संख्या यू के 09 टी ए 0468 के विधिमान्य कागजात जैसे कि रजिस्ट्रेशन, परमिट, फिटनेस इत्यादि उपलब्ध थे और क्या इस यान के चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी ?

(iv) क्या याची प्रतिकर के लिए हकदार हैं यदि हां तो कितनी राशि के बाबत और यह राशि उनको किससे दिलाई जाए ?

6. दावेदार श्रीमती बीखा देवी ने मौखिक साक्ष्य में, स्वयं का परीक्षण अभि. सा. 1 के रूप कराया और टीकम सिंह चौहान का परीक्षण अभि. सा. 2 के रूप में कराया । दस्तावेजी साक्ष्य में पहचान पत्र, चालन अनुज्ञप्ति,

परिवार रजिस्टर, मृत्यु प्रमाणपत्र, पुलिस थाना की जनरल डायरी, शव-परीक्षा रिपोर्ट, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट, बीमा आवरण टिप्पण, रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र, परमिट, फिटनेस प्रमाणपत्र इत्यादि फाइल किए गए । अपीलार्थी बीमा कंपनी ने न तो कोई मौखिक साक्ष्य कराया और न ही कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया ।

7. अधिकरण ने पक्षों को सुनने और उनके द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचारोपरांत सभी विवाद्यकों का निर्णय दावेदारों के पक्ष में किया और तारीख 25 नवम्बर, 2017 के अपने निर्णय और अधिनिर्णय द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध 2,00,000/- रुपए के प्रतिकर का अधिनिर्णय दिया । अधिकरण ने विवाद्यक संख्या 1 पर निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए, बीमा आवरण टिप्पण पर पृथक् खंड का परिशीलन करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि यान का स्वामी-चालक व्यक्तिगत दुर्घटना द्वारा आच्छादित था तथापि, यह (व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा) सीमित था और बीमाकर्ता का संपूर्ण दायित्व बीमा की किसी एक अवधि के दौरान 2 लाख रुपए की राशि से अधिक नहीं होगा और अधिकरण ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम झूमा शाह और अन्य वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए अभिनिर्धारित किया कि दावा याचिका पोषणीय है । विवाद्यक संख्या 3 पर अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि यान दुर्घटना की तारीख को सभी दस्तावेजों अर्थात् रजिस्ट्रेशन, फिटनेस और परमिट के साथ चलाया जा रहा था और दुर्घटना की तारीख पर चालक के पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति भी थी । प्रतिकर के संबंध में विवाद्यक संख्या 4 पर, अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि यान 2,00,000/- रुपए तक के सीमित दायित्व के द्वारा आच्छादित था और यान को समस्त विधिमान्य कागजों के साथ चलाया जा रहा था इसलिए, दावेदार 2,00,000/- रुपए के प्रतिकर के हकदार हैं ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि बीमाकृत/स्वामी ने केवल संवैधानिक चालक के संबंध में प्रीमियम का संदाय किया था व्यक्तिगत दुर्घटना आच्छादन पालिसी के अधीन यान के बीमाकृत/स्वामी द्वारा कोई बीमा आच्छादन नहीं लिया गया था । यह दलील भी दी कि यद्यपि मृतक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी और सुसंगत तारीख और समय पर सुसंगत कागज भी विधिमान्य थे, परन्तु चूंकि वह पालिसी के अधीन व्यक्तिगत रूप से बीमाकृत नहीं था, बीमा कंपनी केवल 2,00,000/- रुपए के प्रतिकर के संदाय की दायी थी, यदि सवेतन चालक

दुर्घटना में मारा जाता ।

9. स्वीकृततः, मृतक जो यान का स्वामी और चालक था । उसके पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी और दुर्घटना के समय उसके पास सभी विधिमान्य कागज थे और बीमा पालिसी भी प्रभावी थी । मृतक अपने स्वामित्वाधीन यान को स्वयं चला रहा था और यान किसी सवेतनिक चालक द्वारा नहीं चलाया जा रहा था । इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि यान कौन चला रहा था, चाहे वह यान का स्वामी था या कोई सवेतनिक चालक, चूंकि चालक के लिए प्रीमियम का संदाय द्वारा बीमाकृत किया गया था और किसी विशिष्ट व्यक्ति के लिए नहीं । अतः, अधिकरण ने दावेदारों को 2,00,000/- रुपए का प्रतिकर प्रदान करके न्यायसंगत कार्य किया है ।

10. पूर्वोक्त को ध्यान में रखते, इस न्यायालय का विचार है कि विवाद्यक संख्या 1 के संबंध में विद्वान् अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष में कोई मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता । जहां तक अन्य विवाद्यकों पर अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों का संबंध है, इस न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण ने साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के पश्चात् ही निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं और इस प्रकार इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

11. परिणामस्वरूप, अपील गुणागुण से रहित है और इसे शुरुआत में ही खारिज किया जाता है ।

12. साविधिक धनराशि संबंधित अधिकरण को वापस की जाए ताकि उसे दावेदारों के पक्ष में निर्मुक्त किया जा सके ।

अपील खारिज की गई ।

मही./अवि.

टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड (मैसर्स)

बनाम

मैसर्स सोमा एजेन्सी, जमशेदपुर और अन्य

तारीख 3 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 37, नियम 1 और भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) – धारा 69(2) – रजिस्ट्रीकृत भागीदारी फर्म – रजिस्ट्रीकृत भागीदारी फर्म द्वारा वाद – प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में वादी के दावे को स्वीकार किया जाना – प्रतिवादी द्वारा वाद की ग्राह्यता के संबंध में आपत्ति करते हुए फर्म के रजिस्ट्रीकरण के बारे में इनकार – वादी द्वारा फर्म का रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाना – प्रतिवादी की आपत्ति अधिनियम की धारा 69(2) के अधीन स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है – वादी मांगे गए अनुतोष का हकदार है ।

प्रतिवादी/अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई वर्तमान अपील में विद्वान् उप न्यायाधीश-4, जमशेदपुर द्वारा 1994 के धन वाद सं. 05 में तारीख 24 जून, 1997/7 जुलाई, 1997 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री को चुनौती दी गई है । वादियों द्वारा वाद वादियों के हक में वाद फाइल करने की तारीख से अब तक के ब्याज और वसूली की तारीख तक 24 प्रतिशत की दर से भावी ब्याज और खर्चे सहित 6,59,826.38 रुपए की वसूली के लिए डिक्री की ईप्सा करते हुए वाद फाइल किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा भागतः डिक्री पारित की और प्रतिवादियों के विरुद्ध खर्चे का आदेश पारित करते हुए यह निदेश दिया कि वे डिक्री पर हस्ताक्षर करने की तारीख से 90 दिनों के भीतर वादियों को 6,80,000/- रुपए की डिक्रीत धनराशि का संदाय करें । प्रतिवादियों को यह भी निदेश किया गया था कि वे वाद के लंबन के दौरान ब्याज और डिक्रीत धनराशि पर 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से भावी ब्याज का संदाय करेंगे और इससे विफल रहने पर वादी प्रतिवादियों के खर्चे पर न्यायालय की प्रक्रिया द्वारा डिक्रीत देयों की वसूली के लिए हकदार होंगे । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा साक्ष्य के दौरान पेश की गई सामग्री प्रदर्शों और उनके अभिवचनों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह पाया कि प्रतिवादी-कंपनी ने वादी के दावे को लिखित कथन के पैरा 18 में स्वीकार किया है । इसका पी. डब्ल्यू. 1 के इन कथनों से भी समर्थन पाया गया है कि प्रतिवादी द्वारा देय स्वीकार किए गए थे । तद्नुसार विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी अपने हक में 6,80,000/- रुपए की डिक्री के लिए हकदार है । तद्नुसार विवाद्यक सं. (iv) का वादी के हक में उत्तर दिया गया था । विवाद्यक सं. (i) से (iii) एक साथ विनिश्चित किए गए थे । विद्वान् विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए प्रतिवादी द्वारा भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के अधीन किए गए आक्षेप में कोई बल नहीं पाया कि वादी ने 5 भागीदारों के ब्यौरे फाइल किए थे । इसके अतिरिक्त वादी-फर्म के रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र को भी अभिलेख पर प्रदर्श-6 के रूप में पेश किया गया था । अतः प्रतिवादी का यह अभिवाक् कि केवल 2 भागीदार थे, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं पाया गया । अतः वादी-फर्म द्वारा फाइल किया गया वाद ग्रहण किए जाने योग्य ठहराया गया था । तद्नुसार आक्षेपित निर्णय द्वारा अनुरोध किया गया अनुतोष मंजूर किया गया था, यद्यपि 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से वादकालीन और भावी ब्याज मंजूर किया गया था तथापि, वाद फाइल करने से पूर्व की अवधि के लिए ब्याज मंजूर नहीं किया गया था । तथापि, प्रतिवादी लिखित कथन के पैरा 18 में की गई स्वीकृति से संबंधित निष्कर्षों को स्पष्ट करने में समर्थ नहीं हुए, क्योंकि प्रतिवादी ने वादी के हक में 6,80,000/- रुपए के देयों को स्वीकार किया था । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दलीलें देने के दौरान यह भी कहा है कि उप न्यायाधीश-I, जमशेदपुर के न्यायालय में प्रतिवादियों द्वारा वादियों के विरुद्ध फाइल किया गया 1994 का धन वाद सं. 52 भी खारिज किया गया है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा बल देकर दी गई दलीलों के बावजूद वाद की ग्राह्यता के संबंध में दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि फर्म एक रजिस्ट्रीकृत भागीदार फर्म थी । वाद भागीदारी फर्म के नाम से ही फाइल किया गया है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी सूचित किया है कि इस अपील के लंबन के दौरान प्रतिवादी/अपीलार्थी को तारीख 7 सितंबर, 1998 और तारीख 17 दिसंबर, 1998 के अंतरिम आदेशों द्वारा यह निदेश दिया गया है कि वे तारीख 25 सितंबर, 1998 के आदेश के अनुपालन में निष्पादन न्यायालय के समक्ष

सम्पूर्ण डिक्रीत धनराशि जमा करें । प्रत्यर्थी को यह भी अनुज्ञात किया गया था कि वह निष्पादन न्यायालय के समाधान के लिए बैंक गारंटी दाखिल करने पर उक्त धनराशि आहरित कर सकता है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को दिए गए अनुदेश के अनुसार वादी/प्रत्यर्थी ने 9,16,939/- रुपए की धनराशि की बैंक गारंटी जमा कर दी थी, जब डिक्रीत धनराशि आहरित की गई थी । उक्त बैंक गारंटी तारीख 3 अप्रैल, 2019 तक के लिए थी और यह अभी भी विधिमान्य है । प्रश्नगत बिन्दु जिनके बारे में अपीलार्थी व्यथित हुआ है अर्थात् 6,80,000/- रुपए के दावे की ग्राह्यता पर विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष और भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए वाद की ग्राह्यता पर तात्विक साक्ष्य और पक्षकारों के अभिवचनों को दृष्टिगत करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा चर्चा की गई है, जैसा कि इस निर्णय के उपरोक्त पैरों में उल्लेख किया गया है । चूंकि विद्वान् विचारण न्यायालय ने स्वयं प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन में की गई स्वीकृति के आधार पर अपना समाधान किया है और चूंकि प्रतिवादियों द्वारा वादी के विरुद्ध 3,23,565.50 रुपए की धनराशि की वसूली के लिए फाइल किया गया 1994 का धन वाद सं. 52 भी खारिज कर दिया गया था इसलिए वादी के हक में डिक्रीत 6,80,000/- रुपए के दावे के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह, तथ्य की किसी त्रुटि से या अभिलेख पर के तात्विक साक्ष्य के मूल्यांकन की कमी से ग्रसित है । इसके प्रतिकूल प्रदर्श-6 को दृष्टिगत करते हुए वाद की ग्राह्यता से संबंधित निष्कर्ष भी अखंडनीय है क्योंकि विचारण के दौरान वादी-कंपनी के रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र को साबित किया गया है । फर्म एक रजिस्ट्रीकृत भागीदारी होने के नाते उसके विरुद्ध वाद फाइल किया जा सकता है और किसी संविदा से उद्भूत अधिकारों का प्रवर्तन कराया जा सकता है अथवा ऐसे किसी व्यक्ति की ओर से वाद फाइल किया जा सकता है जिसे फर्म का भागीदार बनाया गया है । अतः इस न्यायालय का दोनों मुद्दों पर यह समाधान हो गया है कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री में ऐसी कोई विधिक या तथ्यों की त्रुटि नहीं है जिसमें हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता हो । डिक्रीत धनराशि जमा कर दी गई है और चूंकि अंतरिम आदेश के आधार पर प्रत्यर्थियों के हक में वसूली का आदेश किया गया है इसलिए निष्पादन न्यायालय प्रत्यर्थियों द्वारा किए गए आवेदन में प्रस्तुत बैंक गारंटी को उन्मुक्त करेगा । अपील खारिज की जाती है । तद्नुसार डिक्री बनाई जाए । (पैरा 8, 10, 11 और 13)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1997 की प्रथम अपील सं. 102.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जी. एम. मिश्रा, उमेश मिश्रा और दिनेश पाठक

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह – अपीलार्थी के काउंसेल को सुना गया । प्रत्यर्थी अपने काउंसेल के जरिए उपस्थित हुए थे तथापि, आज उनकी ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ । पूर्वतर तारीख को भी उनकी ओर से कोई प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था ।

2. प्रतिवादी/अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई वर्तमान अपील में विद्वान् उप न्यायाधीश-4, जमशेदपुर द्वारा 1994 के धन वाद सं. 05 में तारीख 24 जून, 1997/7 जुलाई, 1997 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री को चुनौती दी गई है ।

3. वादियों द्वारा वाद वादियों के हक में वाद फाइल करने की तारीख से अब तक के ब्याज और वसूली की तारीख तक 24 प्रतिशत की दर से भावी ब्याज और खर्चे सहित 6,59,826.38 रुपए की वसूली के लिए डिक्री की ईप्सा करते हुए वाद फाइल किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा भागतः डिक्री पारित की और प्रतिवादियों के विरुद्ध खर्चे का आदेश पारित करते हुए यह निदेश दिया कि वे डिक्री पर हस्ताक्षर करने की तारीख से 90 दिनों के भीतर वादियों के 6,80,000/- रुपए की डिक्रीत धनराशि का संदाय करें । प्रतिवादियों को यह भी निदेश किया गया था कि वे वाद के लंबन के दौरान ब्याज और डिक्रीत धनराशि पर 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से भावी ब्याज का संदाय करेंगे और इससे विफल रहने पर वादी प्रतिवादियों के खर्चे पर न्यायालय की प्रक्रिया द्वारा डिक्रीत देयों की वसूली के लिए हकदार होंगे । पक्षकारों के संक्षिप्त पक्षकथन जैसा कि विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अभिवचन किए गए थे, इस प्रकार हैं ।

4. वादी ने यह दावा किया कि उसकी एक रजिस्ट्रीकृत भागीदारी फर्म है जो अपने जमशेद पुर के कार्यालय से संविदा, वितरण और मांग पर प्रदाय का कारबार करती है और प्रतिवादी कंपनी द्वारा तारीख 20 जनवरी, 1990 के आदेशों/कार्य आदेशों द्वारा 8,69,000/- रुपए की धनराशि के

लिए विभिन्न किस्म के कामों का जाब-कार्य सौंपा गया था । तारीख़ 27 दिसंबर, 1991 को आदेश सं. 5 द्वारा कार्य-आदेश परिवर्तित किया गया था और कार्य का मूल्य 15,26,372/- रुपए तक बढ़ा दिया गया था । वादी को भी तारीख 1 अप्रैल, 1988 के मंजूरी आदेश द्वारा 12,094.56 रुपए के लिए कार्य दिया गया था । उसे तारीख 18 अक्तूबर, 1990 के कार्य आदेशों द्वारा 5,60,000/- रुपए के लिए पुनः कार्य दिया गया था । वादी का यह पक्षकथन है कि उसे 10 कार्य दिए गए थे । प्रतिवादी-कंपनी ने कार्यों को पूरा होने के पश्चात् उपर्युक्त 10 कार्य बिलों से 34,992/- रुपए रोक लिए । यह भी दलील दी गई है कि प्रतिवादी ने कार्य सं. 319/टी. एम./1989-90 के संबंध में 2,48,916.42 रुपए की धनराशि के लिए तारीख 11 जुलाई, 1991 के तीसरे लेखा बिल का संदाय नहीं किया । समान रूप में प्रतिवादी-कंपनी द्वारा तारीख 6 सितंबर, 1991 के कार्य (जाब) सं. 319 टी. एम./89-90 के चौथे और अंतिम बिल का भी संदाय नहीं किया गया जो 4,42,482.84 रुपए के लिए था । तारीख 24 जनवरी, 1992 के जाब सं. 109/टी. एम./1990-91 के तीसरे लेखा बिल के विरुद्ध देय 53,708.15 रुपए की एक अन्य धनराशि का संदाय कर दिया गया था तथापि, उक्त जाब का चौथा और अंतिम बिल जो 28,855.21 रुपए के लिए था, का भी संदाय नहीं किया गया था । अत: 10,54,826.38 रुपए की कुल धनराशि देय थी जिसमें 24 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज भी सम्मिलित था ।

5. प्रतिवादियों के अनुसार वादियों को तारीख 22 दिसंबर, 1990 को 50 कार गैरज, 9 साइकिल सहयुक्त स्कूटर शेड बनाने के लिए कार्य सौंपा गया था और जब उसने इसका अनुपालन नहीं किया तो प्रतिवादी तारीख 4 नवंबर, 1991 की संविदा का पर्यवसान करने के लिए बाध्य हो गए जिससे प्रतिवादियों को 10,03,565/- रुपए की हानि और नुकसान हुआ । प्रतिवादियों ने लिखित कथन के पैरा 18 में यह स्वीकार किया है कि उन कार्यों सहित जिनके लिए वर्तमान वाद फाइल किया गया है, विभिन्न कार्यों के लिए प्रतिवादियों द्वारा वादियों को 6,80,000/- रुपए की धनराशि देय है । प्रतिवादियों ने यह कथन किया है कि वादियों द्वारा संविदा के भंग के कारण प्रतिवादी 3,23,565.50 रुपए की धनराशि की वसूली के हकदार हैं जैसा कि लिखित कथन की अनुसूची-ख में ब्यौरा दिया गया है । प्रतिवादियों ने विद्वान् उप न्यायाधीश-I , जमशेदपुर के समक्ष भी 1994 का धन वाद सं. 52 फाइल किया था ।

6. वादी ने अपने भागीदार जे. के. सोहन की परीक्षा कराई जिसने 11 जुलाई, 1997 का बिल साबित किया है । उसने टिस्को के सहायक आंचलिक इंजीनियर और उप अधीक्षक, टाउन इंजीनियर, टाउन इंजीनियरिंग द्वारा अपने प्रमाणन को भी साबित किया है, जिसे प्रदर्श-2 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । उसने 1 जनवरी, 1992 के बिल को भी साबित किया है जिसे प्रदर्श-2/ए के रूप में चिह्नांकित किया गया है । उसने 12 अक्तूबर, 1991 के बिल को साबित किया है, जो प्रदर्श-2/सी है । गड्डा के प्रदाय के लिए चालान प्रदर्श-3 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि अधीक्षक टाउन इंजीनियर ने प्रतिभूति धन को वापस करने के लिए एक पत्र जारी किया था जिसका अनुपालन नहीं किया गया । इसे प्रदर्श-4 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । प्रदर्श-5 तारीख 30 अगस्त, 1993 का पत्र है जो प्रतिवादी ज्येष्ठ उप प्रबंधक, टाउन इंजीनियरिंग द्वारा जारी किया गया है । इस साक्षी ने तारीख 5 जुलाई, 1991 के बिल को भी साबित किया है जिस पर सं. 31 अंकित है और जिस पर प्रतिवादी-कंपनी के कर्मचारियों द्वारा प्रति-हस्ताक्षर किए गए हैं, जिसे प्रदर्श-2/डी के रूप में चिह्नांकित किया गया है । प्रदर्श-2/सी तारीख 11 जुलाई, 1991 और तारीख 23 नवंबर, 1991 का बिल है जिसे प्रदर्श-6 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । वादी ने वादी-फर्म का रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र भी फाइल किया है, जिसे प्रदर्श-6 के रूप में चिह्नांकित किया गया है ।

7. प्रतिवादियों ने अपने पक्षकथन के समर्थन के लिए डी. डब्ल्यू.-1 चन्द्रमा राय की परीक्षा कराई, जिसने यह कथन किया है कि वादी-कंपनी एक रजिस्ट्रीकृत भागीदारी फर्म नहीं है और इसलिए दावा सही नहीं है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि मैं उन कार्यों के बारे में नहीं जानता हूं जिनके लिए वादी ने वाद फाइल किया है । पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

(i) क्या वाद जैसे कि इसमें अभिवचन किए गए हैं, ग्राह्य है ?

(ii) क्या वादियों के पास वाद हेतुक है ?

(iii) क्या वाद परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित है ?

(iv) क्या वादी 10,54,836.38 रुपए की डिक्री पाने के हकदार हैं, जैसा कि वादपत्र की अनुसूची-ए में ब्यौरा दिया गया है और क्या वे प्रतिवादी के विरुद्ध वादकालीन ब्याज और भावी ब्याज पाने के

हकदार हैं ?

8. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा साक्ष्य के दौरान पेश की गई सामग्री प्रदर्शों और उनके अभिवचनों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह पाया कि प्रतिवादी-कंपनी ने वादी के दावे को लिखित कथन के पैरा 18 में स्वीकार किया है । इसका पी. डब्ल्यू. 1 के इन कथनों से भी समर्थन पाया गया है कि प्रतिवादी द्वारा देय स्वीकार किए गए थे । तद्नुसार विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी अपने हक में 6,80,000/- रुपए की डिक्री के लिए हकदार है । तद्नुसार विवाद्यक सं. (iv) का वादी के हक में उत्तर दिया गया था । विवाद्यक सं. (i) से (iii) एक साथ विनिश्चित किए गए थे । विद्वान् विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए प्रतिवादी द्वारा भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के अधीन किए गए आक्षेप में कोई बल नहीं पाया कि वादी ने 5 भागीदारों के ब्यौरे फाइल किए थे । इसके अतिरिक्त वादी-फर्म के रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र को भी अभिलेख पर प्रदर्श-6 के रूप में पेश किया गया था । अतः प्रतिवादी का यह अभिवाक् कि केवल 2 भागीदार थे, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं पाया गया । अतः वादी-फर्म द्वारा फाइल किया गया वाद ग्रहण किए जाने योग्य ठहराया गया था । तद्नुसार आक्षेपित निर्णय द्वारा अनुरोध किया गया अनुतोष मंजूर किया गया था, यद्यपि 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से वादकालीन और भावी ब्याज मंजूर किया गया था तथापि, वाद फाइल करने से पूर्व की अवधि के लिए ब्याज मंजूर नहीं किया गया था ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दोनों आधारों पर विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को प्रश्नगत करने का प्रयास किया है ।

10. तथापि, वह लिखित कथन के पैरा 18 में की गई स्वीकृति से संबंधित निष्कर्षों को स्पष्ट करने में समर्थ नहीं हुए, क्योंकि प्रतिवादी ने वादी के हक में 6,80,000/- रुपए के देयों को स्वीकार किया था । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दलीलें देने के दौरान यह भी कहा है कि उप न्यायाधीश-I, जमशेदपुर के न्यायालय में प्रतिवादियों द्वारा वादियों के विरुद्ध फाइल किया गया 1994 का धन वाद सं. 52 भी खारिज किया गया है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा बल देकर दी गई दलीलों के बावजूद वाद की ग्राह्यता के संबंध में दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि फर्म एक रजिस्ट्रीकृत भागीदार फर्म थी । वाद भागीदारी फर्म के नाम से ही फाइल किया गया है ।

11. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी सूचित किया है कि इस अपील के लंबन के दौरान प्रतिवादी/अपीलार्थी को तारीख 7 सितंबर, 1998 और तारीख 17 दिसंबर, 1998 के अंतरिम आदेशों द्वारा यह निदेश दिया गया है कि वे तारीख 25 सितंबर, 1998 के आदेश के अनुपालन में निष्पादन न्यायालय के समक्ष सम्पूर्ण डिक्रीत धनराशि जमा करें । प्रत्यर्थी को यह भी अनुज्ञात किया गया था कि वह निष्पादन न्यायालय के समाधान के लिए बैंक गारंटी दाखिल करने पर उक्त धनराशि आहरित कर सकता है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को दिए गए अनुदेश के अनुसार वादी/प्रत्यर्थी ने 9,16,939/- रुपए की धनराशि की बैंक गारंटी जमा कर दी थी, जब डिक्रीत धनराशि आहरित की गई थी । उक्त बैंक गारंटी तारीख 3 अप्रैल, 2019 तक के लिए थी और यह अभी भी विधिमान्य है ।

12. मैंने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर विचार किया और उनके द्वारा अवलंब ली गई सुसंगत सामग्री जो अभिलेख पर मौजूद है और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया ।

13. प्रश्नगत बिन्दु जिनके बारे में अपीलार्थी व्यथित हुआ है अर्थात् 6,80,000/- रुपए के दावे की ग्राह्यता पर विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष और भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए वाद की ग्राह्यता पर तात्विक साक्ष्य और पक्षकारों के अभिवचनों को दृष्टिगत करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा चर्चा की गई है, जैसा कि इस निर्णय के उपरोक्त पैरों में उल्लेख किया गया है । चूंकि विद्वान् विचारण न्यायालय ने स्वयं प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन में की गई स्वीकृति के आधार पर अपना समाधान किया है और चूंकि प्रतिवादियों द्वारा वादी के विरुद्ध 3,23,565.50 रुपए की धनराशि की वसूली के लिए फाइल किया गया 1994 का धन वाद सं. 52 भी खारिज कर दिया गया था इसलिए वादी के हक में डिक्रीत 6,80,000/- रुपए के दावे के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह, तथ्य की किसी त्रुटि से या अभिलेख पर के तात्विक साक्ष्य के मूल्यांकन की कमी से ग्रसित है । इसके प्रतिकूल प्रदर्श-6 को दृष्टिगत करते हुए वाद की ग्राह्यता से संबंधित निष्कर्ष भी अखंडनीय है क्योंकि विचारण के दौरान वादी-कंपनी के रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र को साबित किया गया है । फर्म एक रजिस्ट्रीकृत भागीदारी होने के नाते उसके विरुद्ध वाद फाइल किया जा सकता है और किसी संविदा से उद्भूत अधिकारों का प्रवर्तन कराया जा सकता है अथवा ऐसे किसी व्यक्ति की ओर से वाद फाइल किया जा सकता है जिसे फर्म का भागीदार

बनाया गया है । अतः इस न्यायालय का दोनों मुद्दों पर यह समाधान हो गया है कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री में ऐसी कोई विधिक या तथ्यों की त्रुटि नहीं है जिसमें हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता हो । डिक्रीत धनराशि जमा कर दी गई है और चूंकि अंतरिम आदेश के आधार पर प्रत्यर्थियों के हक में वसूली का आदेश किया गया है इसलिए निष्पादन न्यायालय प्रत्यर्थियों द्वारा किए गए आवेदन में प्रस्तुत बैंक गारंटी को उन्मुक्त करेगा । अपील खारिज की जाती है । तद्नुसार डिक्री बनाई जाए ।

14. निचले न्यायालय के अभिलेख तुरंत संबंधित न्यायालयों को वापस भेजे जाएं ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2018) 2 सि. नि. प. 79 **बम्बई**

जोटन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

पी. एस. एल. लिमिटेड

तारीख 5 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति के. आर. श्रीराम

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31) – धारा 10, 64(2) [सपठित रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 की धारा 4(ख) और 22] – निगमित लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया का प्रारम्भ – दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम का उत्तरवर्ती कानून है – दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) के रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22 पर आधारित होने के कारण यह दलील कि कम्पनी न्यायालय (उच्च न्यायालय) परिसमापन याचिकाओं के लम्बन की दशा में राष्ट्रीय कम्पनी अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों को व्यादेश द्वारा निषिद्ध करने की शक्ति रखता है, पूर्णतया गलत है और विधायी आशय के सर्वथा विपरीत है ।

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 – धारा 10, 64(2) [सपठित रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 की धारा 4(ख) और 22 और कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 433 और 434] – कतिपय परिस्थितियों में लेनदारों/कारपोरेट देनदारों को उच्च न्यायालय (कम्पनी न्यायालय) की शरण में जाने से तो वर्जित किया जा सकता है किन्तु दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण की शरण में जाने से नहीं । एकमात्र इस कारणवश कि कम्पनी न्यायालय के समक्ष लम्बित परिसमापन कार्यवाहियों में नोटिस तामील हो जाने के पश्चात् 1956 के कम्पनी अधिनियम के उपबंध अभिभावी होंगे, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध सामान्य कार्यवाहियों में वर्जित नहीं हो जाते ।

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 – धारा 64(2) – वर्जन – धारा 64(2) में अभिव्यक्त रूप से एक वर्जन समाविष्ट है जो किसी भी न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को प्रदत्त शक्ति के मतावलम्बन में किसी भी कार्यवाही या की जाने वाली कार्यवाही के संबंध में कोई व्यादेश प्रदान करने से निषिद्ध करता है ।

कम्पनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) – धारा 433, 434 [सपठित कम्पनी (न्यायालय) नियम, 1959 का नियम 9 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 141] – निगमित कम्पनी के विरुद्ध परिसमापन याचिका का फाइल किया जाना और शासकीय परिसमापक की नियुक्ति – कम्पनी अधिनियम के अधीन चलने वाली कार्यवाहियों पर सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू होंगे जब तक कि कम्पनी अधिनियम के अधीन फाइल की गई कार्यवाही कम्पनी (न्यायालय) नियम के विपरीत न हों – कम्पनी (न्यायालय) नियम का नियम 9 उपबंध करता है कि कम्पनी न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है – सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 सिविल प्रक्रिया संहिता को सिविल अधिकारिता वाले किसी भी न्यायालय में लम्बित कार्यवाहियों पर लागू करती है – यदि इन उपबंधों को संयुक्त रूप से पढ़ा जाए तो यह दर्शित होता है कि कम्पनी न्यायालय को उसके द्वारा पूर्व में पारित किसी भी आदेश को वापस लेने की शक्ति प्राप्त है ।

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 – धारा 63, 64(2), 238 [कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 433 और 434] – दिवाला और

शोधन अक्षमता संहिता के अधीन कार्यवाहियों के संबंध में कम्पनी न्यायालय (उच्च न्यायालय) की अधिकारिता अभिव्यक्त रूप से वर्जित है । इसके अतिरिक्त दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) को दृष्टि में रखते हुए कम्पनी न्यायालय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने से व्यादेशित करने से निषिद्ध है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238 कम्पनी अधिनियम, 1956 पर अध्यारोही प्रभाव रखती है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी-आवेदक पी. एस. एल. लिमिटेड, जो कम्पनी याचिकाओं में प्रत्यर्थी है, ने 2017 के कम्पनी आवेदन में तारीख 19 जुलाई, 2017 के आदेश का प्रभाव समाप्त किए जाने/वापस लिए जाने के प्रयोजनार्थ यह आवेदन फाइल किया है । विद्वान् कम्पनी न्यायाधीश ने इस सकारण आदेश द्वारा दिवाला संकल्प के लिए अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष 2016 के दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन प्रत्यर्थी-आवेदक द्वारा फाइल की गई कार्यवाही को स्थगित कर दिया था । वर्तमान आवेदन में जो विवाद्यक विचारणार्थ उद्‌भूत हुआ, यह है कि क्या कम्पनी न्यायालय को राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष किसी कारपोरेट देनदार द्वारा फाइल की गई कार्यवाही को स्थगित करने की अधिकारिता प्राप्त है और वह भी तब जबकि किसी लेनदार द्वारा पूर्व में संस्थित कम्पनी याचिका को विचारार्थ स्वीकार किया जा चुका है और इसीलिए उसको राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को अन्तरित नहीं किया गया, किन्तु जहां कोई अनन्तिम परिसमापक की नियुक्ति नहीं की गई । याची-जोटन इंडिया प्रा. लिमिटेड द्वारा तारीख 10 मार्च, 2015 को 2015 की कम्पनी याचिका संख्या 434 प्रत्यर्थी-आवेदक (मूल प्रत्यर्थी) के विरुद्ध 1956 के कम्पनी अधिनियम की धाराओं 433 और 434 के अधीन वह माल, जिसकी आपूर्ति की गई थी, के संबंध में असंदत्त बिलों पर संदेय 7.25 करोड़ रुपए की बकाया राशि का ब्याज सहित दावा करते हुए फाइल की गई । प्रत्यर्थी-आवेदक ने तारीख 19 जून, 2015 को 1985 के रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम के अन्तर्गत गठित औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष एक निदेश प्रस्तुत किया । तारीख 1 दिसम्बर, 2016 को 2003 का रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) निरसन अधिनियम अधिसूचित कर दिया गया और इसलिए रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध)

अधिनियम निरसित हो गया । इसी के साथ 2016 दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को भी प्रभावी कर दिया गया । निरसन अधिनियम की धारा 4(ख) किसी भी कम्पनी, जिसका निर्देश तारीख 1 दिसम्बर, 2016 को औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष लम्बित था, को निरसन अधिनियम की अधिसूचना की तारीख से अर्थात् 1 दिसम्बर, 2016 से 180 दिनों के भीतर अर्थात् तारीख 31 मई, 2017 को या उससे पूर्व कारपोरेट दिवाला संकल्प प्रक्रिया के प्रारम्भ के लिए और ऋणस्थगन के आदेश के लिए शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करती है । तारीख 9 मार्च, 2017 को 2015 की वर्तमान कम्पनी याचिका संख्या 434 को विचारार्थ ग्रहण किए जाने वाला आदेश पारित किया गया । कम्पनी याचिका को विचारार्थ ग्रहण करते हुए विद्वान् न्यायाधीश ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की कि चूंकि प्रत्यर्थी कम्पनी की समस्त आस्तियां प्रतिभूत लेनदारों के पक्ष में प्रतिभूत आस्तियां हैं और उनके नियंत्रण में हैं, मैं इस प्रक्रम पर शासकीय परिसमापक को नियुक्त करने का प्रस्ताव नहीं करता और याची पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर शासकीय परिसमापक की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं, यदि यह पाया जाता है कि प्रत्यर्थी कम्पनी की आस्तियां खतरे में हैं । प्रत्यर्थी-आवेदक ने तारीख 29 मई, 2017 को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन कारपोरेट दिवाला संकल्प प्रक्रिया के प्रारम्भ के लिए अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष 2017 की कम्पनी याचिका (दिवाला और शोधन) संख्या 37/10/NCLT/AHM ("दिवाला और शोधन अक्षमता आवेदन") आवेदन प्रस्तुत किया । इस आवेदन में यह तथ्य कि उपरोक्त कम्पनी याचिका फाइल की जा चुकी है, का प्रकटीकरण अभिव्यक्त रूप से कर दिया गया । तारीख 18 जुलाई, 2017 को प्रत्यर्थी-आवेदक द्वारा फाइल किया गया दिवाला और शोधन अक्षमता आवेदन अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष सुनवाई के लिए प्रस्तुत हुआ और प्रतिभूत लेनदारों, जिन पर दिवाला और शोधन अक्षमता आवेदन का नोटिस तामील किया गया था, को भी सुना गया । पक्षों को सुने जाने के पश्चात् अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने मामले को आदेश के लिए सुरक्षित कर लिया और उसको तारीख 20 जुलाई, 2017 को सूचीबद्ध किए जाने के लिए निर्देशित किया । उसी दिन याची ने 2017 का कम्पनी आवेदन संख्या 333 अस्थाई परिसमापक की नियुक्ति की ईप्सा

करते हुए फाइल किया । याची ने तारीख 19 जुलाई, 2017 को इस न्यायालय के समक्ष 2017 के कम्पनी आवेदन संख्या 333 के संबंध में अस्थायी परिसमापक की नियुक्ति के लिए न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया । विद्वान् न्यायाधीश ने काउंसेलों को सुनने के पश्चात् अहमदाबाद के माननीय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता आवेदन की सुनवाई जारी रखने के विरुद्ध आदेश पारित करते हुए निषिद्ध कर दिया और 2017 के कम्पनी आवेदन संख्या 333 को तारीख 26 जुलाई, 2017 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध कर दिया । प्रत्यर्थी-आवेदक द्वारा तारीख 20 जुलाई, 2017 को 2017 की अपील संख्या 280 तारीख 19 जुलाई, 2017 के आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई । कम्पनी आवेदन का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – माननीय उच्चतम न्यायालय ने इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड वाले मामले में इस बात की गहराईपूर्वक जांच करने के प्रयोजनार्थ कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को क्यों अधिनियमित किया गया और इसको किन प्रयोजनों के लिए अधिनियमित किया गया, दिवाला विधि सुधार समिति, 2015 की रिपोर्ट को निर्दिष्ट किया है । संक्षेप में, सुधार समिति ने इस बात का परीक्षण किया कि क्या किसी कम्पनी, जिसने अपने ऋण संबंधी दायित्वों के पुनर्संदाय में चूक कारित की है जबकि प्रतिभूत लेनदार स्थिरीकृत आस्तियों, जो उनको गिरवी की गई थीं, का पुनः कब्जा लेने के योग्य हैं, ऐसे अनेक लेनदार और ऋणदाता है, जो प्रतिभूत ऋणदाता नहीं हैं और जब चूक की जाती है, तो ऋणदाता शुद्ध वर्तमान मूल्य (एन. पी. वी.) आधार पर ऋण के केवल 20 प्रतिशत मूल्य की वसूली कर पाने में समर्थ होते हैं । संक्षेप में, सुधार समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि वे उद्योग, जिनका मजबूत आस्ति आधार नहीं है, को ऋण की सुविधा से वंचित किया जा रहा है जिसके कारण कारपोरेट्स (निगमित निकायों) के लिए लम्बी अवधि के कारपोरेट बंधपत्र (असुरक्षित) जारी किए जाने के द्वारा वित्त जुटाना, जो अधिकांश अवसंरचना परियोजनाओं के लिए अत्यावश्यक है, कठिन होता जा रहा है । सुधार समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि जहां कोई चूक घटित होती है तो असुरक्षित उधार देने वाला या तो कम्पनी को परिसमापन की ओर ले जाएगा या जहां लेनदार इस आशा में कि समझौते के आधार पर निकाला गया मूल्य परिसमापन मूल्य से अधिक है, शुद्ध वर्तमान मूल्य के आधार पर घटी हुई रकम स्वीकार कर लेते हैं तो ऋण के पुनर्गठन के लिए समझौता करेगा । तीसरी संभाव्यता

यह होगी कि चूक करने वाली फर्म को एक चलते हुए समुत्थान के रूप में बेच दिया जाए । इन व्यापक कोटियों के अनेक मिश्रित पुनर्गठनों पर विचार किया जा सकता है । सुधार समिति ने परीक्षण के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि यह उत्तम विकल्प होगा कि केवल एक फोरम इन सभी संभाव्यताओं का मूल्यांकन करे और निर्णय ले, जो सुधार समिति के विचार में "लेनदारों की समिति" है जिसमें सभी वित्तीय लेनदारों को वह ऋण जो उन्होंने दिया हुआ है, के परिमाण के अनुपात में अपने पक्ष को रखने का हक है । लेनदारों की समिति के विचार में किसी चूक करने वाली फर्म के साथ क्या बर्ताव होना चाहिए, एक कारोबारी विनिश्चय है और ऐसा विनिश्चय केवल लेनदारों को ही लेना चाहिए । सुधार समिति ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि परिसमापन प्रक्रिया के क्रियान्वयन में होने वाले विलम्ब, जिसके कारण परिसमापन में समय के साथ-साथ ह्रास की उच्च आर्थिक दर के कारण मूल्य गिरता जाता है, के कारण समस्या का कोई व्यवहारिक हल नहीं है । समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची की लेनदारों और देनदारों को यह निर्णय लेने और समस्या को पूर्ण रूप से समझने और इस संबंध में लिए गए निर्णयों पर सहमत होने की स्वतंत्रता होनी चाहिए कि क्या वह चूककर्ता इकाई वित्तीय असफलता या कारोबारी असफलता का सामना कर रही थी और क्या उसको पुनर्जीवित किया जा सकता है । सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन, जो लाया जा सकता है, यह है कि जब कम्पनी अपने ऋणों को संदाय में चूक करती है, तो प्रबंधतंत्र, जो चूक के बाद भी कम्पनी का नियंत्रण अपने पास रखे हुए हैं, के बजाय कम्पनी का नियंत्रण लेनदारों को अंतरित कर दिया जाना चाहिए । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उद्देश्य और प्रयोजन, जिसके लिए इसको अधिनियमित किया गया था, को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि इसको दिवाला और शोधन समाधान प्रक्रिया जिसको दिवाला समाधान वृत्तिक की नियुक्ति द्वारा और लेनदारों की समिति के सृजन द्वारा कड़ाईपूर्वक समयबद्ध तरीके में क्रियान्वित किया जाना है, को स्थापित करने के लिए अधिनियमित किया गया । यही वे शक्तियां हैं जिनका प्रयोग राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा किया जा सकता है और न कि कम्पनी न्यायालय द्वारा । यही वह कारण है कि दिवाला समाधान प्रक्रिया के लम्बन के दौरान दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन ऋण स्थगन को उपबंधित किया गया है । इसलिए, कम्पनी अधिनियम और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के मध्य जो सर्वाधिक मूल विभेद है, वह यह है

कि जबकि कम्पनी अधिनियम के अधीन परिसमापन का मामला न्यायालय द्वारा अकेले निर्णीत किया जा सकता है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन इसमें पूर्ण रूप से परिवर्तन कर दिया गया चूंकि यह संहिता कम्पनी के प्रबंधतंत्र को विस्थापित करती है और दिवाला समाधान वृत्तिक की नियुक्ति की जाती है और लेनदारों की समिति पर कम्पनी के भाग्य का निर्णय छोड़ दिया जाता है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को अधिनियमित किए जाने के पूर्व रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत यह अपेक्षित था कि जिन कम्पनियों को रुग्ण औद्योगिक कम्पनी के रूप में परिभाषित कर दिया गया है, वे कम्पनियां औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष संदर्भ फाइल करें । यदि एक बार कोई संदर्भ फाइल कर दिया जाता था, तो रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22 के अधीन ऋणस्थगन लागू हो जाता था जिसके परिणामस्वरूप समस्त कार्यवाहियां जैसे कि परिसमापन, निष्पादन और इसी प्रकार की अन्य कार्यवाहियां न तो फाइल की जा सकती थी और यदि फाइल कर भी दी जाती थी तो उन पर कोई कार्यवाही नहीं हो सकती थी । तथापि, रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम सभी कम्पनियों पर लागू नहीं होता था । यह केवल उन औद्योगिक उपक्रमों पर लागू होता था जिनको उक्त अधिनियम की अनुसूची में वर्णित किया गया था । अनुभव से यह दर्शित होता है कि यद्यपि रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम को रुग्ण कम्पनियों को पुनर्जीवित किए जाने के प्रशंसनीय उद्देश्य के साथ अधिनियमित किया गया था, फिर भी कम्पनी के प्रवर्तकों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा रहा था, जो धारा 22 के अधीन उपलब्ध ऋण स्थगन के कारण लम्बित कार्यवाहियों को या तो औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड या औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन अपील प्राधिकरण के समक्ष किसी न किसी कारणवश अनिश्चितकाल के लिए लम्बित रखे हुए थे जिस कारणवश अधिनियम का उद्देश्य और प्रयोजन विफल हो गया था और लेनदारों के अधिकार विफल हो गए थे । इसके विपरीत दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड और मोबीलाक्स इनोवेशन्स (प्रा.) लिमिटेड वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, में अनेक लक्षण हैं जो रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की विफलताओं के मुकाबले में लाभदायक परिणाम दर्शित करता है । जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मदुरा कोर्ट्स लिमिटेड वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, रुग्ण औद्योगिक

कम्पनी अधिनियम के प्रभावी होने की अवधि के दौरान यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस अधिनियम को कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर प्रमुखता प्राप्त है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 252 को दृष्टि में रखते हुए रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम को तारीख 1 दिसम्बर, 2016 से निरसित किया जा चुका है । उक्त निरसित अधिनियम की धारा 4(ख) के अधीन औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड/ औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन अपीली प्राधिकरण के समक्ष लम्बित समस्त कार्यवाहियां उपशमित (समाप्त) हो गईं और उन उपशमित कार्यवाहियों के संबंध में कम्पनी को अनुज्ञा प्रदान करते हुए तारीख 1 दिसम्बर, 2016 से 180 दिनों की अवधि के भीतर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष संदर्भ प्रस्तुत करने के लिए उपबंध बनाए गए हैं, जिस संदर्भ के लिए यह अपेक्षित है कि उस पर दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के अनुसार विचार किया जाए । यदि याची द्वारा जो दलीलें दी गईं हैं, सही हैं, तो किसी कम्पनी द्वारा किसी ऐसी स्थिति में जहां कम्पनी के विरुद्ध परिसमापन याचिका फाइल किए जाने के पश्चात् जारी की गई नोटिस 1956 के कम्पनी अधिनियम द्वारा शासित है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 252 के उपबंधों के अधीन प्रस्तुत किए गए संदर्भ पर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा विचार नहीं किया जा सकता और यदि विचार किया भी जाता है तो वह अकृत होगा । इस निर्वचन की अपेक्षा के लिए 1956 के कम्पनी अधिनियम के किसी सारभूत उपबंध को अभिव्यक्त या सारगर्भित रूप से सुरक्षित नहीं किया गया है । यदि विधान-मंडल का यह आशय था कि वे परिसमापन याचिकाएं जिनको किसी अन्य लेनदार द्वारा उसी कम्पनी के संबंध में फाइल किया गया है, जिनकी सुनवाई करने से अधिकारिताप्राप्त उच्च न्यायालय की अधिकारिता समाप्त हो चुकी है, और उन याचिकाओं को राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों में प्राथमिकता के आधार पर सुना जाएगा, तो विधान-मंडल या तो दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता में या अन्तरण नियम अधिसूचना में इस बात को स्पष्ट करता । इसके विपरीत, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) के उपबंध उपदर्शित करते हैं कि विधान-मंडल का यह आशय कदापि नहीं था कि कंपनी न्यायालय को राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों के विरुद्ध व्यादेश देने की शक्ति होगी । इसके अलावा, जब दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को अधिनियमित किया गया और रुग्ण औद्योगिक कंपनी

अधिनियम के उपबंधों को तारीख 21 दिसम्बर, 2016 की अधिसूचना द्वारा निरसित किया गया तो वे कम्पनियां जिन्होंने रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम के अधीन संदर्भ फाइल किया था, को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के अधीन याचिका फाइल करने के लिए 180 दिनों की अवधि प्रदान की गई थी । अतः ऋणस्थगन की अवधि, जो रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम की धारा 22 के परिणामस्वरूप परिसमापन कार्यवाही के रूप में क्रियान्वित हो रही थी, को उक्त अधिसूचना द्वारा विहित अवधि में दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन जारी रखा जा सकता था (यदि राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण द्वारा ऐसा किया जाना उचित पाया जाता) । (पैरा 49, 50, 51, 56, 59 और 60)

यह तथ्य कि वे परिसमापन याचिकाएं, जिनमें नोटिस की तामीली हो चुकी है, 1956 के कम्पनी अधिनियम द्वारा शासित होती रहेंगी, का अर्थ यह है कि उन कार्यवाहियों पर 1956 का कम्पनी अधिनियम लागू होगा । फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि किसी ऐसी परिसमापन याचिका, जिसमें नोटिस की तामीली हो चुकी है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन कोई नई कार्यवाही फाइल की जाती है और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन आदेश पारित कर दिए जाते हैं, तो दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन उपबंधित परिणाम उन कार्यवाहियों के संबंध में लागू नहीं होंगे जिनमें नोटिस तामील हो चुके हैं, चाहे वे कार्यवाहियां किसी भी प्रक्रम पर हों । वास्तव में, यदि याची की दलीलों को स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 6 द्वारा आच्छादित किसी व्यक्ति को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन उस कम्पनी के संबंध में कार्यवाही फाइल करने का कोई अधिकार उपलब्ध नहीं होगा, जिसके विरुद्ध उच्च न्यायालय द्वारा परिसमापन याचिका को विचारार्थ रोक लिया गया है । इस प्रकार के किसी भी निर्वचन को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की भाषा द्वारा समर्थन प्राप्त नहीं है । इसके अलावा, विधान-मंडल का यह अभिव्यक्त और सारगर्भित आशय है कि (i) 1956 के कम्पनी अधिनियम के अधीन परिसमापन याचिका फाइल करने का अधिकार वापस ले लिया जाए; और (ii) दिवाला समाधान और कम्पनियों को पुनर्जीवित किए जाने के संबंध में आरम्भ की गई समस्त कार्यवाहियों को अपवर्जित किए बिना दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों को लागू किया जाए । यह दिवाला और

शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14, 63 और 64(2) में अभिव्यक्त भाषा से स्पष्ट है । यह कम्पनी (कठिनाइयों का निराकरण) चौथा आदेश से भी स्पष्ट है कि वास्तव में जिसको सुरक्षित किया गया है, वह केवल परिसमापन याचिकाएं हैं जो अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालयों के समक्ष लम्बित हैं और न कि स्वयमेव वह कम्पनी जिसके संबंध में इस प्रकार की कार्यवाहियों को सुरक्षित किया गया है । कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार की कम्पनी अभी भी दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों, यदि उनका अवलंब लिया जाता है, के अध्यधीन है और वे परिसमापन कार्यवाहियां जिनके संबंध में नोटिस तामील हो चुकी और जिनको उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिधारित किया गया है, सुरक्षित हैं । इसका यह अर्थ नहीं है दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता उक्त कम्पनी के संबंध में, यदि उसका अवलंब लिया जाता है, लागू नहीं होगी । चूंकि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम का उत्तराधिकारी कानून है और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22 पर आधारित होने के कारण यह दलील कि कम्पनी न्यायालय परिसमापन याचिकाओं के लम्बन की दशा में राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों को व्यादेश द्वारा निषिद्ध करने की शक्ति रखता है, पूर्णतया गलत है और विधायी आशय के विपरीत है । 1959 कम्पनी (न्यायालय) नियम के अनुसार 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध 1956 के कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत चलने वाली कार्यवाहियों पर लागू होंगे, जब तक कि इस प्रकार से फाइल किया गया आवेदन उक्त नियम के अभिव्यक्त उपबंधों के विपरीत न हों । 1959 कम्पनी (न्यायालय) नियम का नियम 9 उपबंधित करता है कि कम्पनी न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 सिविल अधिकारिता के किसी भी न्यायालय में लम्बित समस्त कार्यवाहियों पर इसको लागू करती है । संयुक्त रूप से पढ़े जाने पर यह दर्शित होगा कि कम्पनी न्यायालय को उसके द्वारा पूर्व में पारित किए गए किसी भी आदेश को वापस लेने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी आदेश को किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा वापस लिया जा सकता है यदि उस आदेश को पारित करने में अन्तर्निहित रूप से अधिकारिता की चूक हुई है । (पैरा 67, 68, 69, 85, 86 और 87)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) एस. सी. सी. आनलाइन 1025 : **इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड और एक अन्य** ;	11, 30.2
[2017]	(2017) एस. सी. सी. आनलाइन 1154 : **मोबीलोक्स इनोवेशन्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **किरुसा साफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड** ;	11
[2017]	(2017) 202 कम्पनी केसेज 148 : **मैसर्स अशोक कमर्शियल इंटरप्राइजेज** बनाम **पारिक एल्यूमिनेक्स लिमिटेड** ;	11
[2017]	(2017) 5 एस. सी. सी. 1 : **बैंक आफ न्यूयार्क मेल्लोन** बनाम **जैनिथ इनोफोटेक** ;	11
[2017]	(2017) 201 कम्पनी केसेज 509 (कलकत्ता) : **प्रशांता कुमार मित्रा और अन्य** बनाम **इंडिया स्टीम लांड्री** ;	11
[2016]	(2016) 7 एस. सी. सी. 603 : **मदुरा कोट्स लिमिटेड** बनाम **मोदी रबड़ लिमिटेड और एक अन्य** ;	11, 23
[2016]	मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा 2016 की कम्पनी याचिका सं. 331 और साथ में 2016 के कम्पनी आवेदन (एल.) संख्या 766 में तारीख 23 दिसम्बर, 2016 को दिया गया निर्णय : **वेस्ट हिल्स रियेलिटी प्रा. लिमिटेड** बनाम **नीलकमल रियेलटर्स टावर प्रा. लिमिटेड** ;	11, 27
[2015]	(2015) 1 एस. सी. सी. 298 : **घनश्यामशारदा** बनाम **शिव शंकर ट्रेडिंग कम्पनी** ;	11
[2014]	2014 (4) बोम्बे सी. आर. 114 : **रेंटवर्क्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **स्माल इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट बैंक आफ इंडिया** ;	11

[2014]	(2014) 1 एस. सी. सी. 479 : **जगदीश सिंह** बनाम **हीरा लाल और अन्य ;**	20
[2013]	(2013) 4 एस. सी. सी. 381 : **ओफीशियल लिक्विडेटर, उत्तर प्रदेश** बनाम **इलाहाबाद बैंक और अन्य ;**	18
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 744 : **कॉम्पिटीशन कमीशन आफ इंडिया** बनाम **स्टील अथारिटी आफ इंडिया ;**	57
[2009]	(2009) 8 एस. सी. सी. 646 : **नाहर इंडस्ट्रियल इंटरप्राइजेज लि.** बनाम **हांगकांग एण्ड शंघाई बैंकिंग कारपोरेशन ;**	11
[2007]	(2007) 7 एस. सी. सी. 753 : **मेघल होम्स (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **श्रीनिवास गिरनी के. के. समिति ;**	26
[2007]	(2007) 6 महाराष्ट्र ला जर्नल 422 : **डा. राइटर्स फूड प्रोडक्ट्स प्रा. लिमिटेड** बनाम ;	11
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 190 : **राजस्थान राज्य वित्त निगम** बनाम **शासकीय परिसमापक ;**	21
[2004]	(2004) 4 एस. सी. सी. 311 : **मर्डिया केमिकल्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य ;**	11
[2000]	ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1535 : **इलाहाबाद बैंक** बनाम **केनरा बैंक और अन्य ;**	21
[2000]	(2000) 4 एस. सी. सी. 406 पैरा 40, पेज 427 : **इलाहाबाद बैंक** बनाम **केनरा बैंक ;**	11
[2000]	(2000) 5 एस. सी. सी. 515 : **मैसर्स रिषभ एग्रो इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **पी. एन. बी. कैपिटल सर्विसेज लिमिटेड ;**	11

[1999] (1999) 4 एस. सी. सी. 396 :
बूधिया स्वेन और अन्य बनाम गोपीनाथ देब और अन्य ; 11

[1998] (1998) 5 एस. सी. सी. 554 :
रियल वैल्यू एप्लाएन्सेज लिमिटेड बनाम केनरा बैंक ; 11, 25

[1983] (1983) 1 एस. सी. सी. 228 :
नेशनल टेक्सटाइल्स वर्कर्स यूनियन बनाम पी. आर. रामकृष्णन् और अन्य ; 11

[1983] (1983) 4 एस. सी. सी. 625 :
काटन कारपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड बनाम यूनाइटेड इंडस्ट्रियल बैंक लिमिटेड । 11

रिट (अपीली) अधिकारिता : **2017 का कम्पनी आवेदन संख्या 572 में कम्पनी आवेदन संख्या 333 और 417 (साथ में 2016 की कम्पनी याचिका संख्या 256 और 392 और 2017 का कम्पनी आवेदन संख्या 572, 333 और 417**).

याची/आवेदक की ओर से सर्वश्री जनक द्वारकादास (वरिष्ठ अधिवक्ता), साथ में (सुश्री) अंकिता सिंघानिया, आमिर अरसीवाला, ओम प्रकाश झा और (मैसर्स ला प्वाइंट की ओर से) राघव शेखर, (2015 की कम्पनी याचिका संख्या 878 में मैसर्स खेतान एण्ड कम्पनी की ओर से) (सुश्री) अरुणदाथी वेंकटरमण, (2015 की कम्पनी याचिका संख्या 1048 में मैसर्स एम. वी. किनी एण्ड कम्पनी की ओर से) कुणाल छेड़ा और साथ में अर्श मिश्रा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री जल अंध्यारुजिना, (सुश्री) आकांक्षा अग्रवाल, (सुश्री) शिल्पा नायर, (सुश्री) लीजम वांगड़ी, और (मैसर्स ट्राईलीगल की ओर से) अक्षय अरोड़ा

मध्यक्षेपी आवेदक की ओर से (2017 के कम्पनी आवेदन संख्या 417 में मैसर्स वी. देशपाण्डे एण्ड कम्पनी की ओर से) श्री रोहित गुप्ता और साथ में (सुश्री) निखिल रजनी

निर्णय

प्रत्यर्थी-आवेदक पी. एस. एल. लिमिटेड, जो कम्पनी याचिकाओं में प्रत्यर्थी है, ने 2017 के कम्पनी आवेदन (जो उनके विरुद्ध फाइल किया गया) में तारीख 19 जुलाई, 2017 को पारित आदेश के प्रभाव को समाप्त किए जाने/वापस लिए जाने के प्रयोजनार्थ यह आवेदन फाइल किया है । विद्वान् कम्पनी न्यायाधीश ने कोई सकारण आदेश पारित न करते हुए दिवाला समाधान के लिए अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष 2016 के दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन प्रत्यर्थी-आवेदक द्वारा फाइल की गई कार्यवाही को स्थगित कर दिया था । वर्तमान आवेदन में जो विवाद्यक विचारणार्थ उद्भूत हुआ है, यह है कि क्या कम्पनी न्यायालय को राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष किसी कारपोरेट देनदार द्वारा फाइल की गई कार्यवाही को स्थगित करने की अधिकारिता प्राप्त है यद्यपि लेनदार द्वारा पूर्व में संस्थित कम्पनी याचिका को विचारणार्थ स्वीकार किया जा चुका है, किन्तु किसी अनन्तिम परिसमापक की नियुक्ति नहीं की गई है (और इसीलिए उसको राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को अन्तरित नहीं किया गया) ।

2. याची-जोटन इंडिया प्रा. लिमिटेड द्वारा तारीख 10 मार्च, 2015 को 2015 की कम्पनी याचिका संख्या 434 प्रत्यर्थी-आवेदक (मूल प्रत्यर्थी) के विरुद्ध 1956 के कम्पनी अधिनियम की धाराओं 433 और 434 के अधीन वह माल, जिसकी आपूर्ति की गई थी, के संबंध में असंदत्त बिलों पर संदेय 7.25 करोड़ रुपए की बकाया राशि का ब्याज सहित दावा करते हुए फाइल की गई । मैं, इस आवेदन के प्रयोजनार्थ अन्य कम्पनी याचिकाओं में उल्लिखित तथ्यों पर विचार नहीं कर रहा । प्रत्यर्थी-आवेदक ने तारीख 19 जून, 2015 को 1985 के रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम के अन्तर्गत गठित औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष एक निदेश प्रस्तुत किया था ।

3. तारीख 1 दिसम्बर, 2016 को 2003 का रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) निरसन अधिनियम ("निरसन अधिनियम") अधिसूचित कर

दिया गया और इसलिए 1985 का रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम निरसित हो गया । इसी के साथ 2016 का दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को भी प्रभावी कर दिया गया । निरसन अधिनियम (दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता द्वारा यथासंशोधित) की धारा 4(ख) किसी भी कम्पनी, जिसका निर्देश तारीख 1 दिसम्बर, 2016 को औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष लम्बित था, को निरसित अधिनियम की अधिसूचना की तारीख से 180 दिनों की अवधि के भीतर अर्थात् तारीख 31 मई, 2017 को या उसके पूर्व कारपोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया के प्रारम्भ और ऋणस्थगन के आदेश के लिए शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करती है ।

4. तारीख 9 मार्च, 2017 को 2015 की वर्तमान कम्पनी याचिका संख्या 434 को विचारणार्थ ग्रहण किए जाने वाला आदेश पारित किया गया । कम्पनी याचिका को विचारणार्थ ग्रहण करते हुए विद्वान् न्यायाधीश ने जो मताभिव्यक्ति की, वह निम्नलिखित है :–

> "........ चूंकि प्रत्यर्थी कम्पनी की समस्त आस्तियां प्रतिभूत लेनदारों के पक्ष में प्रतिभूत आस्तियां हैं और उनके नियंत्रण में हैं, मैं इस प्रक्रम पर शासकीय परिसमापक नियुक्त करने का प्रस्ताव नहीं करता । याची पश्चात्‌वर्ती प्रक्रम पर शासकीय परिसमापक की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं, यदि यह पाया जाता है कि प्रत्यर्थी कम्पनी की आस्तियां खतरे में हैं ।"

5. प्रत्यर्थी-आवेदक ने तारीख 29 मई, 2017 को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन कारपोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ के लिए अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष 2017 की कम्पनी याचिका (दिवाला और शोधन) संख्या 37/10/NCLT/AHM ("दिवाला और शोधन अक्षमता आवेदन") प्रस्तुत किया अर्थात् निरसन अधिनियम द्वारा विहित 180 दिनों की परिसीमा के भीतर । इस आवेदन में यह तथ्य कि उपरोक्त कम्पनी याचिका फाइल की जा चुकी है, का प्रकटीकरण अभिव्यक्त रूप से कर दिया गया ।

6. तारीख 18 जुलाई, 2017 को प्रत्यर्थी-आवेदक द्वारा फाइल किया गया दिवाला और शोधन अक्षमता आवेदन अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष सुनवाई के लिए प्रस्तुत हुआ और प्रतिभूत

लेनदारों, जिन पर दिवाला और शोधन अक्षमता आवेदन का नोटिस तामील किया गया, को भी सुना गया । पक्षों को सुने जाने के पश्चात् अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने मामले को आदेश के लिए सुरक्षित कर लिया और उसको तारीख 20 जुलाई, 2017 को सूचीबद्ध किए जाने के लिए निर्देशित किया । उसी दिन याची ने 2017 का कम्पनी आवेदन (जिसको दर्ज कराया गया) संख्या 333 अस्थायी परिसमापक की नियुक्ति की ईप्सा करते हुए फाइल किया ।

7. याची ने तारीख 19 जुलाई, 2017 को इस न्यायालय के समक्ष 2017 के कम्पनी आवेदन (जिसको दर्ज कराया गया) संख्या 333 के संबंध में अस्थायी परिसमापक की नियुक्ति के लिए न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया । विद्वान् न्यायाधीश ने काउंसेलों को सुनने के पश्चात् अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता आवेदन की सुनवाई जारी रखने के विरुद्ध आदेश पारित करते हुए निषिद्ध कर दिया और 2017 के कम्पनी आवेदन (जिसको दर्ज कराया गया) संख्या 333 को तारीख 26 जुलाई, 2017 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध कर दिया । इस आदेश को सुविधा की दृष्टि से इसमें इसके पश्चात् "तारीख 19 जुलाई, 2017 का आक्षेपित आदेश" के रूप में निर्दिष्ट किया गया है ।

8. प्रत्यर्थी-आवेदक द्वारा तारीख 20 जुलाई, 2017 को 2017 की अपील (जिसको दर्ज कराया गया) संख्या 280 में पारित तारीख 19 जुलाई, 2017 के आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई ।

9. तारीख 1 अगस्त, 2017 को इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा उक्त अपील में यह स्पष्ट करते हुए आदेश पारित किया गया कि यह प्रश्न कि क्या कम्पनी न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश को आक्षेपित आदेश पारित करने की अधिकारिता प्राप्त थी, इस प्रश्न को विचारणार्थ रखा जाता है और विनिर्धारण के लिए छोड़ा जाता है । इस अभिव्यक्त स्वतंत्रता के साथ प्रत्यर्थी-आवेदक ने अपनी अपील को वापस ले लिया ।

10. तारीख 15 सितम्बर, 2017 को वर्तमान आवेदन तारीख 19 जुलाई, 2017 के आक्षेपित आदेश को वापस लिए जाने/उसका प्रभाव समाप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल की गई । प्रत्यर्थी-आवेदक के अनुसार तारीख 19 जुलाई, 2017 का यह आक्षेपित आदेश उस अधिकारिता के आधिक्य में पारित किया गया है जिसको कम्पनी न्यायालय

को प्रदत्त किया गया है और इसलिए, उसको वापस लिए जाने/उसका प्रभाव समाप्त किए जाने योग्य है ।

11. प्रत्यर्थी-आवेदक के काउंसेल श्री द्वारकादास के निवेदन इस प्रकार हैं :–

(क) विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा प्रदान किया गया स्थगनादेश जारी है और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन अर्थात् कारपोरेट दिवाला संकल्प प्रक्रिया के आरम्भ के कारण उपबंधित अनुतोषों की ईप्सा किए जाने के कारण प्रत्यर्थी-आवेदक और उसके समस्त लेनदारों, चाहे वे प्रतिभूत लेनदार हों या अप्रतिभूत या वित्तीय या सक्रिय, के कानूनी अधिकारों पर अत्यधिक प्रतिकूल रूप से प्रभाव डाल रहा है ।

(ख) दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता एक पश्चात्वर्ती और विशेष कानून है जो एक समयबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत कारपोरेट व्यक्तियों की आस्तियों के मूल्य के अधिकतम निर्धारण और समस्त पण्यधारकों के हितों को संतुलित किए जाने के लिए दिवाला समाधान के विषय पर विचार करता है और रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम का उत्तरवर्ती कानून है । 1956 का कम्पनी अधिनियम, जो एक पूर्ववर्ती कानून है दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता का मार्ग प्रशस्त करता है (**इलाहाबाद बैंक** बनाम **केनरा बैंक**[1]) ।

(ग) इसके अतिरिक्त, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 228 में एक अध्यारोही उपबंध समाविष्ट है । इसके सदृश 2013 के कम्पनी अधिनियम में कोई उपबंध न होने के कारण दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध 2013 के कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी होने चाहिएं ।

(घ) यह प्रश्न कि क्या उच्च न्यायालय में फाइल की गई किसी परिसमापन याचिका (जिसका नोटिस प्रत्यर्थी कम्पनी को दिया जा चुका है) की सुनवाई इस कारणवश स्थगित किए जाने योग्य हैं कि किसी अन्य लेनदार द्वारा राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष कोई पश्चात्वर्ती याचिका फाइल कर दी गई है, पर न्यायमूर्ति धानुका

[1] (2000) 4 एस. सी. सी. 406 पैरा 40, पेज 427.

द्वारा **अशोक कमर्शियल इंटरप्राइजेज** बनाम **पारिक एल्यूमिनेक्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में विचार किया गया और अभिनिर्धारित किया गया कि विधान-मंडल का आशय तारीख 7 दिसम्बर, 2016 की अन्तरण अधिसूचना से स्पष्ट है कि दोनों ही कार्यवाहियां अर्थात् परिसमापन की कार्यवाही और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण की कार्यवाही एक साथ चल सकती है ।

(ङ) दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 63 उन विवाद्यकों पर कार्यवाही पर विचार करने, जिन पर विचार करने की अधिकारिता राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को है, से सिविल न्यायालय की अधिकारिता को वर्जित करती है । यह धारा 2002 के सरफेसी अधिनियम की धारा 34 के समविषयक है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 231 विनिर्दिष्ट रूप से किसी भी मामले में कार्यवाही किए जाने से निषिद्ध किए जाने या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए जाने से सिविल न्यायालय या किसी अन्य प्राधिकारी की शक्तियों में कटौती करती है । यह धारा स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी-आवेदक की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत लम्बित आवेदन का आश्रय लेते हुए कोई व्यादेश पारित किए जाने के मामले में इस न्यायालय की शक्ति में कटौती करती है ।

(च) तारीख 19 जुलाई, 2017 का आक्षेपित आदेश स्पष्टतः **अशोक कमर्शियल इंटरप्राइजेज** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए विचार के विपरीत है चूंकि आक्षेपित आदेश में इस न्यायालय के समक्ष फाइल की गई कार्यवाही में परिसमापन कार्यवाही को प्राथमिकता दी गई है । यह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) की आज्ञा, जो अभिव्यक्त रूप से राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष कार्यवाही के संबंध में व्यादेश प्रदान किए जाने से किसी न्यायालय को वर्जित करती है, के बावजूद है । [**घनश्यामशारदा** बनाम **शिव शंकर ट्रेडिंग कम्पनी**[2] और **मर्डिया केमिकल्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3]] ।

---

[1] (2017) 202 कम्पनी केसेज 148.

[2] (2015) 1 एस. सी. सी. 298.

[3] (2004) 4 एस. सी. सी. 311.

(छ) दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने के मामले में कारपोरेट देनदार के विरुद्ध कानूनी वर्जन केवल और केवल तब क्रियान्वित होता है जब कारपोरेट देनदार के विरुद्ध कोई परिसमापन का आदेश अस्तित्व में है । श्री द्वारकादास ने निम्नलिखित निर्णयों का भी अवलंब लिया :

(1) **इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **आई. सी. आई. सी. आई. बैंक लिमिटेड और एक अन्य**[1],

(2) **मोबीलोक्स इनोवेशन्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **किरुसा साफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड**[2],

(3) **नेशनल टेक्सटाइल्स वर्कर्स यूनियन** बनाम **पी. आर. रामकृष्णन् और अन्य**[3],

(4) **मदुरा कोट्स लिमिटेड** बनाम **मोदी रबड़ लिमिटेड और एक अन्य**[4],

(5) **बैंक आफ न्यूयार्क मेल्लोन** बनाम **जैनिथ इनोफोटेक**[5],

(6) **वेस्ट हिल्स रियेलिटी प्रा. लिमिटेड** बनाम **नीलकमल रियेलटर्स टावर प्रा. लिमिटेड**[6],

(7) **डा. राइट्र्स फूड प्रोडक्ट्स प्रा. लिमिटेड**[7] बनाम,

(8) **बूधिया स्वेन और अन्य** बनाम **गोपीनाथ देब और अन्य**[8],

(9) **प्रशांता कुमार मित्रा और अन्य** बनाम **इंडिया स्टीम लांड्री**[9],

---

[1] (2017) एस. सी. सी. आनलाइन 1025.
[2] (2017) एस. सी. सी. आनलाइन 1154.
[3] (1983) 1 एस. सी. सी. 228.
[4] (2016) 7 एस. सी. सी. 603.
[5] (2017) 5 एस. सी. सी. 1.
[6] मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा 2016 की कम्पनी याचिका सं. 331 और साथ में 2016 के कम्पनी आवेदन (एल.) संख्या 766 में तारीख 23 दिसम्बर, 2016 को दिया गया निर्णय ।
[7] (2007) 6 महाराष्ट्र ला जर्नल 422.
[8] (1999) 4 एस. सी. सी. 396.
[9] (2017) 201 कम्पनी केसेज 509 (कलकत्ता).

(10) नाहर इंडस्ट्रियल इंटरप्राइजेज लि. बनाम हांगकांग एण्ड शंघाई बैंकिंग कारपोरेशन[1],

(11) रेंटवर्क्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम स्माल इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट बैंक आफ इंडिया[2],

(12) काटन कारपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड बनाम यूनाइटेड इंडस्ट्रियल बैंक लिमिटेड[3],

(13) रियल वैल्यू एप्लाएन्सेज लिमिटेड बनाम केनरा बैंक[4],

(14) मैसर्स रिषभ एग्रो इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम पी. एन. बी. कैपिटल सर्विसेज लिमिटेड[5] ।

12. मध्यक्षेपी-एडेलविस के काउंसेल श्री गुप्ता ने मौखिक रूप से कोई निवेदन नहीं किए किन्तु उन्होंने अभिकथित किया कि वे श्री द्वारकादास द्वारा किए गए निवेदनों पर भरोसा करते हैं । तथापि, मध्यक्षेपी के वकीलों ने लिखित बहस फाइल की और उनके द्वारा फाइल की गई लिखित बहस इस प्रकार है :–

(I) राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को स्थगित करने की शक्ति –

13. 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता अपने आप में एक सम्पूर्ण संहिता है और यह संहिता विवाद, पुनरुत्थान, पुनर्गठन और किसी योजना के असफल हो जाने की स्थिति में कम्पनी की आस्तियों के परिसमापन के लिए उपबंधित करती है । स्वीकृत रूप से दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन 180 दिनों के ऋण स्थगन, जहां कम्पनी के विरुद्ध आरम्भ की गई समस्त कार्यवाही स्थगित हो जाती है, के लिए उपबंधित किया गया है ।

14. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता एक ऐसे तंत्र के लिए उपबंधित करती है जिसके द्वारा याचियों के दावों पर भी विचार किया जा सकता है । इसलिए, ऐसा नहीं है कि उनके (याचियों के) अधिकार

---

[1] (2009) 8 एस. सी. सी. 646.
[2] (2014 (4) बोम्बे सी. आर. 114.
[3] (1983) 4 एस. सी. सी. 625.
[4] (1998) 5 एस. सी. सी. 554.
[5] (2000) 5 एस. सी. सी. 515.

प्रभावित होंगे किन्तु वास्तविकता यह है कि उनके अधिकारों का, यदि कोई है, न्यायनिर्णयन होगा । तथापि, याची उनको ज्ञात कारणोंवश इस संहिता का आश्रय लेने का अनिच्छुक है और चाहता है कि राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को स्थगित कर दिया जाए ।

15. विवाद्यक यह है कि क्या यह न्यायालय (कम्पनी न्यायालय अर्थात् उच्च न्यायालय) राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को स्थगित कर सकता है, विशेष रूप से दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के प्रकाश में, जो इस प्रकार के मध्यक्षेप को विनिर्दिष्ट रूप से वर्जित करती है ? ऐसा नहीं हो सकता अन्यथा यदि इस तथ्य के प्रकाश में कि राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष याचिका विचारणार्थ स्वीकार किए जाने पर इस माननीय न्यायालय के समक्ष लम्बित याचिका धारा 14 के अनुसार स्थगित हो जाती है, तो यह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों को अर्थहीन बना देगा ।

16. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 63 उन विवाद्यकों पर कार्यवाही पर विचार करने से, जिन पर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकारिता प्राप्त है, सिविल न्यायालयों की अधिकारिता को वर्जित करती है । यह धारा 2002 के सरफेसी अधिनियम के समविषयक है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 231 विनिर्दिष्ट रूप से राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष की गई या की जाने वाली किसी कार्यवाही को निषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल न्यायालयों या किसी अन्य प्राधिकारी की शक्तियों में कटौती करती है । यह धारा स्पष्ट रूप से किसी लम्बित आवेदन का आश्रय लेने से बैंक/मध्यक्षेपी के विरुद्ध कोई व्यादेश पारित किए जाने से इस न्यायालय (कम्पनी न्यायालय या उच्च न्यायालय) की शक्तियों में कटौती करती है ।

17. किसी अन्य न्यायालय के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों को निषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ आदेश पारित करने की इस न्यायालय की शक्ति धारा 446 के अधीन है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध इस संहिता की धारा 238 को दृष्टि में रखते हुए इस सीमा तक कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर अध्यारोही प्रभाव रखते हैं ।

18. इसके अतिरिक्त, 1956 के कम्पनी अधिनियम के अधीन किसी कम्पनी न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए इस न्यायालय की शक्ति साधारण और मूल अधिकारिता के प्रयोग में है और न कि किसी असाधारण

या अन्तर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में । उसके (साधारण और मूल अधिकारिता के) अग्रसरण में कार्य करते हुए यह न्यायालय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही को स्थगित करने की अधिकारिता नहीं रखेगा । वास्तव में कम्पनी न्यायालय और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण, दोनों ही 2013 के कम्पनी अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत सृजित किए गए हैं । इस दलील के समर्थन में **शासकीय परिसमापक, उत्तर प्रदेश** बनाम **इलाहाबाद बैंक और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया गया ।

19. **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों पर विचारोपरान्त विनिर्दिष्ट रूप से धारा 238 पर, यह निष्कर्ष निकाला कि महाराष्ट्र रिलीफ अन्डरटेकिंग अधिनियम के अधीन भी कानूनी रूप से पारित व्यादेश का आदेश दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन कार्यवाही आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ द्वितीय लेनदार के मार्ग का बाधक नहीं बनेगा ।

20. समरूप अध्यारोही उपबंध माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन हेतु **जगदीश सिंह** बनाम **हीरा लाल और अन्य**[2] वाले मामले में उद्‌भूत हुए जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 2002 के सरफेसी अधिनियम के उपबंध सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों पर अध्यारोही प्रभाव रखेंगे और कोई व्यादेश का आदेश प्रदान नहीं किया जा सकता ।

21. इसके अतिरिक्त, 1956 के कम्पनी अधिनियम की धारा 446 वर्तमान याचिका में अन्तर्वलित मामले में लागू नहीं होते और इसलिए कोई अनुज्ञा, जैसा कि इस धारा में अनुध्यात है, अभिप्राप्त किए जाने की आवश्यकता नहीं है । इस स्थिति को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **इलाहाबाद बैंक** बनाम **केनरा बैंक और अन्य**[3] वाले मामले में स्थिरीकृत किया गया है जिसमें 1956 के कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर 1993 के बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम के उपबंधों के प्रभाव का विवाद्यक उद्‌भूत हुआ । माननीय उच्चतम न्यायालय ने

---

[1] (2013) 4 एस. सी. सी. 381.
[2] (2014) 1 एस. सी. सी. 479.
[3] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1535.

अभिनिर्धारित किया कि बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही आरम्भ किए जाने के लिए कम्पनी न्यायालय की अनुज्ञा इस कारणवश अपेक्षित नहीं है कि बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम एक विशेष विधि है जो 1956 के कम्पनी अधिनियम के सामान्य विधि होने के कारण उसके ऊपर अभिभावी है और यह परिकल्पित करते हुए कि दोनों कानून विशेष अधिनियमिति हैं, तो भी पश्चात्‌वर्ती अधिनियम पूर्ववर्ती अधिनियम के ऊपर अभिभावी होगा यदि पश्चात्‌वर्ती विधि में ऐसा कोई उपबंध समाविष्ट है जो उसको अध्यारोही प्रभाव देता है । हमारे समक्ष उपस्थित मामले में बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम की धारा 34 को दृष्टि में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उक्त अधिनियम कम्पनी अधिनियम पर उस सीमा तक अध्यारोही प्रभाव रखता है जहां तक दोनों अधिनियमितियों के मध्य कोई असंगतता न हो । इसलिए, इस निर्णय के विनिश्चयानुपात को वर्तमान मामले में लागू करते हुए दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238 को दृष्टि में रखते हुए दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध अध्यारोही प्रभाव रखेंगे और कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर उस सीमा तक अभिभावी होंगे जिस तक दोनों के मध्य कोई असंगतता न हो । इस निर्णय को उच्चतम न्यायालय की बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा **राजस्थान राज्य वित्त निगम** बनाम **शासकीय परिसमापक**[1] वाले मामले में अनुमोदित किया गया है ।

(II) क्या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण कम्पनी न्यायालय द्वारा सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने का आदेश पारित करने या अस्थायी परिसमापक की नियुक्ति के पश्चात् याचिका पर विचार कर सकता है ?

22. सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने वाला आदेश या अस्थायी परिसमापक की नियुक्ति वाला आदेश याचिका के फाइल किए जाने और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा आदेश पारित किए जाने पर कोई वर्जन सृजित नहीं करेगा चूंकि सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने वाला आदेश मात्र कार्यवाहियों का आरम्भ है और वह परिसमापन का अंतिम आदेश, जो 1956 के कम्पनी अधिनियम की धारा 481 के अधीन पारित किया जाता है, नहीं है । जब तक कम्पनी के परिसमापन का आदेश अर्थात् अंतिम आदेश पारित नहीं किया जाता, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण

---

[1] (2005) 8 एस. सी. सी. 190.

किसी याचिका या आवेदन पर विचार कर सकता है ।

23. इसी प्रकार का एक विवाद्यक माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष **मदुरा कोट्स लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में उद्भूत हुआ जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम की धारा 15 और 22 की उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए, कम्पनी न्यायालय के समक्ष लम्बित कार्यवाही को स्थगित कर दिया यद्यपि कम्पनी न्यायालय ने कम्पनी के परिसमापन के लिए निर्देशित कर दिया है । यहां पर यह उल्लेख करना प्रसंग के बाहर की बात नहीं होगी कि स्थिति रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम की धारा 15, जिसके अधीन औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष निर्देश फाइल किया जाता है और परिणामस्वरूप अन्य न्यायालयों के समक्ष लम्बित समस्त कार्यवाहियां रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम की धारा 22 के अधीन स्थगित हो जाती हैं, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन याचिका फाइल किए जाने के सदृश होगी जिसको ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिनियम दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन ऋण स्थगन घोषित करने के लिए सशक्त है ।

24. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को अधिनियमित करने के पीछे विधान-मंडल का आशय रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम और कम्पनी अधिनियम के उपबंधों को समेकित करना है । रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम की धारा 15 दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के समविषयक है और रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम की धारा 22 दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के सदृश है ।

25. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता ऋण स्थगन घोषित किए जाने के द्वारा कारपोरेट देनदार को पुनर्जीवित करने और कारपोरेट देनदार के मामलों का प्रबंध करने के लिए अन्तरिम समाधान वृत्तिक की नियुक्ति के लिए अधिनियमित किया गया है । इसी प्रकार से रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, दोनों में समाविष्ट सर्वोपरि खंड किसी भी अन्य विधि, जो प्रभाव में हैं, के उपबंधों पर अध्यारोही प्रभाव रखने की सीमा तक समाविष्ट हैं

सिवाय उन विधियों के जिनको अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित कर दिया गया है । वास्तव में, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता और कम्पनी अधिनियम के उपबंधों के मध्य कोई असंगतता नहीं है । तथापि, किसी असंगतता की स्थिति में, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध धारा 238 को दृष्टि में रखते हुए अभिभावी होंगे । ये उपबंध असंगतता या टकराव की स्थिति में तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि पर अध्यारोही प्रभाव प्रदान करते हैं । धारा 238 को दृष्टि में रखते हुए, वह निर्णय जिसका अवलंब लिया गया है अधिक बल के साथ लागू होगा । इस निर्णय के द्वारा उच्चतम न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों जिनमें **रियल वैल्यू एप्लाएसेन्स लिमिटेड** (उपरोक्त) वाला मामला भी सम्मिलिति है, में अधिकथित विधि का अनुसरण किया गया और विभिन्न उच्च न्यायालयों ने भी समान दृष्टिकोण अपनाया ।

26. 1956 के कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत भी जहां धारा 391 कम्पनी के पुनर्गठन के लिए तंत्र उपबंधित करती है, अनेक न्यायालयों ने अनेक अवसरों पर अभिनिर्धारित किया है कि धारा 391 के अधीन फाइल की गई याचिका परिसमापन के आदेश के पश्चात् भी पोषणीय होगी । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मेघल होम्स (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **श्रीनिवास गिरनी के. के. समिति**[1] वाले मामले में स्पष्ट शब्दों में अभिनिर्धारित किया है कि धारा 391 के अधीन फाइल किया गया आवेदन सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने वाला आदेश पारित किए जाने के पश्चात् किन्तु कम्पनी के विघटन के पूर्व पोषणीय है ।

27. याची के काउंसेल श्री अन्ध्यारुजिना ने इस आवेदन का विरोध करते हुए जो निवेदन किए, वे निम्नलिखित हैं :–

(I) **परिसमापन याचिकाएं सुरक्षित किए जाने पर :**

28. 1956 के कम्पनी अधिनियम (1956 का अधिनियम) की धारा 433 (ङ) के अधीन फाइल की गई याचिकाएं, जो तारीख 15 दिसम्बर, 2016 को माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित थीं (सुरक्षित याचिकाएं), को निम्नलिखित उपबंधों के अन्तर्गत सुरक्षित किया गया है :–

(क) 2013 के कम्पनी अधिनियम की धारा 434 अन्य बातों के साथ-साथ किसी जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष 1956

---

[1] (2007) 7 एस. सी. सी. 753.

के अधिनियम के अन्तर्गत लम्बित कार्यवाही के अधिकरण का गठन हो जाने पर उसको अन्तरित किए जाने पर भी विचार करती हैं ।

(ख) दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, जो 2016 के प्रभाव में आई, ने 2013 के अधिनियम की धारा 434 को संशोधित कर दिया । धारा 255 सपठित दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की ग्यारहवीं अनुसूची, अन्य बातों के साथ-साथ 2013 के अधिनियम को निम्नलिखित तरीके में संशोधित करती है –

'255. **2013 के अधिनियम संख्या 18 का संशोधन** – कम्पनी अधिनियम, 2013 ग्यारहवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट तरीके में संशोधित किया जाएगा ।

ग्यारहवीं अनुसूची

कम्पनी अधिनियम, 2013 का संशोधन

34. धारा 434 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् –

434. **कतिपय लम्बित कार्यवाहियों का अंतरण** -

(1) ऐसी तारीख को जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित अधिसूचित की जाए –

(क) ....

(ख) ....

(ग) कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन सभी कार्यवाहियां, जिनके अन्तर्गत माध्यस्थम्, समझौता, ठहराव और पुनर्संरचना और कम्पनी के परिसमापन से संबंधित कार्यवाहियां भी हैं, जो उस तारीख से ठीक पूर्व किसी जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित हैं, अधिकरण को अंतरित हो जाएंगी और अधिकरण उन कार्यवाहियों पर उनके अंतरण से पहले के प्रक्रम से कार्यवाही कर सकेगी :

परन्तु कंपनियों के परिसमापन से संबंधित केवल ऐसी कार्यवाहियां ही अधिकरण को अंतरित की जाएंगी,

जो ऐसे प्रक्रम पर हैं, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किया जाए ।

(2) केन्द्रीय सरकार, कम्पनी विधि बोर्ड या न्यायालयों के समक्ष लम्बित सभी विषयों, कार्यवाहियों या मामलों का इस धारा के अधीन अधिकरण को समय पर अंतरण सुनिश्चित करने के लिए इस अधिनियम के उपबंधों से संगत नियम बना सकेगी ।'

(ग) इसके अतिरिक्त दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 239(1) केन्द्रीय सरकार को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए सशक्त करती है और अभिकथित करती है कि –

'239. **नियम बनाने की शक्ति** –

(1) केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा इस संहिता के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) ....।'

(घ) इसलिए, 2013 के अधिनियम की धारा 434 सपठित दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 239 के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने 2016 के कम्पनी (लम्बित कार्यवाहियों का अंतरण) नियम (जिनको इसमें इसके पश्चात् 'अंतरण नियम' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) तारीख 7 दिसम्बर, 2016 को जारी किए । अंतरण नियम का नियम 5, अन्य बातों के साथ, उपबंधित करता है कि उच्च न्यायालय ने 1956 के अधिनियम की धारा 433(ङ) के अधीन फाइल की गई समस्त याचिकाएं, जिनको सुरक्षित किया गया था, राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को अन्तरित कर दी जाएगी, और इसलिए प्रत्यर्थी-आवेदक के आग्रह पर सुरक्षित की गईं याचिकाएं उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अन्तर्गत रहेगी ।

(ङ) अन्तरण नियम के उपबंधों पर चर्चा की गई और माननीय न्यायमूर्ति एस. सी. गुप्ता द्वारा उनका विस्तारपूर्वक उल्लेख तारीख 23 दिसम्बर, 2016 को **वेस्ट हिल्स रियलटी प्रा. लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में किया गया और अपने तारीख 17 जनवरी, 2017 के आदेश में स्पष्ट कर दिया गया ।

(च) अन्तरण नियम को केन्द्रीय सरकार द्वारा 2017 के कम्पनी (लम्बित कार्यवाहियों का अंतरण) द्वितीय संशोधन नियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् 'संशोधित अंतरण अधिनियम' कहकर निर्दिष्ट किया गया है) द्वारा संशोधित कर दिया गया । संशोधित अंतरण नियम का नियम 5, अन्य बातों के साथ, उपबंधित करता है कि 1956 के अधिनियम की धारा 433(ङ) के अधीन उसी कम्पनी (जैसे कि अन्य सुरक्षित याचिकाएं) के विरुद्ध फाइल की गईं याचिकाएं अधिकरण को अन्तरित नहीं होंगी, चाहे याचिका का नोटिस प्रत्यर्थी पर तामील न हुआ हो ।

(छ) इसलिए, अंतरण नियम और संशोधित अंतरण नियम उच्च न्यायालय में लंबित याचिकाओं, जिनको राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को अंतरित किया जाना है, को सुरक्षित करने के प्रयोजनार्थ विधान-मंडल के आशय को स्पष्ट रूप से उपदर्शित करते हैं और तद्द्वारा याचिकाओं के दो वर्ग सृजित करते हैं ।

(छ.1) 1956 के अधिनियम की धारा 434(ङ) के अधीन याचिकाओं के दो वर्ग इस प्रकार हैं :–

> "(i) सुरक्षित याचिकाएं अर्थात् उच्च न्यायालय में लम्बित याचिकाएं, जिनमें प्रत्यर्थी पर नोटिस की तामीली हो चुकी है और उच्च न्यायालय में एक ही कम्पनी के विरुद्ध लंबित सभी अन्य याचिकाएं जिनमें प्रत्यर्थी पर नोटिस की तामीली नहीं हुई है ।
>
> (ii) सभी वे याचिकाएं जिनको सुरक्षित नहीं किया गया अर्थात् सभी वे याचिकाएं जिनको उच्च न्यायालय में फाइल किया गया किन्तु जिनकी प्रत्यर्थी पर तामीली नहीं की गई ।"

(छ.2) वर्ग (i) में उल्लिखित याचिकाओं के संबंध में विधान-मंडल का आशय यह है कि याचिकाओं पर दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के पूर्ण अपवर्जन में 1956 के अधिनियम के अनुसार विचार किया जाएगा और उनका निस्तारण किया जाएगा ।

(छ.3) वर्ग (ii) में उल्लिखित याचिकाओं के संबंध में विधान-मंडल का स्पष्ट आशय यह है कि उन याचिकाओं को राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण में अंतरित कर दिया जाएगा और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों की धारा 7, 9 और 10 के अधीन और

उसके अधीन विनियमों के अनुसार आवेदनों के रूप में फाइल किया जाएगा ।

(II) दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238 के अधीन सर्वोपरि उपबंध :

29. 1956 के अधिनियम के उपबंध दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के साथ असंगत नहीं हैं जहां तक व्यावृत्त याचिकाओं का संबंध हैं और इसलिए दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238 के अधीन 1956 के अधिनियम के उपबंधों पर अध्यारोही प्रभाव नहीं रखते ।

30. यह आपत्ति किए जाने पर कि 1956 के अधिनियम के अधीन उच्च न्यायालय और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष साथ-साथ कार्यवाही चलाए जाने के विरुद्ध कोई वर्जन नहीं है और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238, जिसका अवलंब प्रत्यर्थी/आवेदक द्वारा लिया गया, का वर्तमान मामले में कोई उपयोजन नहीं है ।

30.1 **मैसर्स अशोक कमर्शियल इंटरप्राइजेज** (उपरोक्त) वाले मामले में अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "62. मेरे विचार में यह स्पष्ट है कि समस्त परिसमापन कार्यवाहियां राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को अंतरित नहीं होंगी । यह स्पष्ट है कि यदि 1959 के कम्पनी (न्यायालय) नियम के नियम 26 के अधीन कम्पनी याचिका के नोटिस की तामीली के आदेश का अनुपालन तारीख 15 दिसम्बर, 2016 के पूर्व नहीं किया गया है, तो ऐसी याचिकाएं राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को अंतरित हो जाएंगी जबकि अन्य सभी कम्पनी याचिकाएं उच्च न्यायालय द्वारा ही सुनी जाएंगी और उनका न्यायनिर्णयन उच्च न्यायालय द्वारा ही किया जाएगा । अतः विधायी आशय स्पष्ट है कि परिसमापन कार्यवाही के दो समुच्चय तारीख 15 दिसम्बर, 2016 के पूर्व या पश्चात् याचिका के नोटिस की तामीली की तारीख पर निर्भर रहते हुए दो विभिन्न फोरमों द्वारा सुने जाएंगे अर्थात् एक राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा और दूसरा उच्च न्यायालय द्वारा । अतः, मेरे विचार में इस स्वीकृत स्थिति को दृष्टि में रखते हुए कि प्रत्यर्थी पर 1959 के कम्पनी (न्यायालय) नियम के नियम 26 के अधीन नोटिस तारीख 15

दिसम्बर, 2016 के पूर्व तामील हो चुका है, इस याचिका को अन्य याचिकाओं के साथ सुने जाने में इस न्यायालय पर कोई रोक नहीं है ।

63. मेरे विचार में जहां तक परिसमापन कार्यवाही का संबंध है, चूंकि 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता और 2013 के कम्पनी अधिनियम या 1956 के कम्पनी अधिनियम के उपबंधों में कम्पनी न्यायालय या राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण की अधिकारिता के संबंध में कोई असंगतता नहीं है, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री अन्ध्यारुजिना द्वारा 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238 का अवलंब लिया जाना पूर्णतया अनुचित है । 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238 में सर्वोपरि उपबंध का प्रभाव, यदि कोई होगा, तो वह केवल तब महत्वपूर्ण होगा जब पूर्वोक्त उपबंधों में कोई टकराव होगा, अन्यथा नहीं । मेरे विचार में याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री सेन ने ठीक निवेदन किया है कि इस स्थिति में संहिता की धारा 238 का इस आधार पर कोई उपयोग नहीं है कि संहिता के उपबंधों और 1956 के कंपनी अधिनियम और 2013 के कम्पनी अधिनियम के मध्य कोई टकराव नहीं है ।"

30.2 **इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में (पैरा संख्या 12-15 में) मुम्बई स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के सदस्यों ने तारीख 27 जुलाई, 2017 के आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया कि :–

"इसलिए, हमारा यह मत है कि धारा 238 उच्च न्यायालयों के समक्ष धारा 433(ङ) के अधीन लंबित कार्यवाहियों, जिनमें कारपोरेट देनदार पर नोटिस पहले ही तामील हो चुका है, पर कोई अध्यारोही प्रभाव नहीं रखेगी ।"

31. दिल्ली स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने कम्पनी के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाहियों और उसी कम्पनी के विरुद्ध राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण में आरम्भ की गई कार्यवाहियों के संबंध में राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण की विभिन्न समकक्ष न्यायपीठों के समक्ष उठाए गए विवाद्यकों पर विचार किया । दिल्ली स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने **यूनियन बैंक आफ इंडिया** बनाम **एरा इन्फ्रा इंजीनियरिंग लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में तारीख 21 अगस्त, 2017 के आदेश द्वारा निम्नलिखित विवाद्यकों को एक विशेष न्यायपीठ, जिसका गठन

राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के माननीय अध्यक्ष द्वारा किया जाना था, के समक्ष विचारणार्थ भेजा :–

"(1) क्या 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन प्रक्रिया का प्रवर्तन परिसमापन याचिकाओं के लंबन के दौरान अलग-अलग उच्च न्यायालयों के समक्ष किया जा सकता है या इस पर स्वतंत्र प्रक्रिया के रूप में विचार किया जाना चाहिए ?

(2) यदि प्रक्रिया को स्वतंत्र प्रक्रिया नहीं माना जाता, तो क्या संहिता के अधीन फाइल की गई याचिका को संबद्ध उच्च न्यायालय, जो परिसमापन कार्यवाहियों के ऊपर आत्यांतिक रूप से नियंत्रण रखता है, को अंतरित किया जाना अपेक्षित है या उसको अनिश्चित-काल के लिए स्थगित करते हुए परिसमापन कार्यवाहियों के अंतिम परिणाम की प्रतीक्षा की जानी चाहिए ।

(3) क्या संहिता मामलों के शीघ्र निस्तारण के लिए निर्धारित समय सीमा के भीतर याचिका को सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने या उसको अस्वीकृत किए जाने के लिए धारा 7, 9 और 10 के अधीन उपबंधित कानूनी आज्ञा को दृष्टि में रखते हुए अनिश्चितकाल के लिए स्थगित किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रयोग किए जाने वाले विवेकाधिकार के लिए कोई गुंजाइश छोड़ती है ?

(4) यदि परिसमापन याचिका को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित किया जाता है और बाद में अपील को खारिज या अपास्त कर दिया जाता है, तो क्या ऐसी स्थिति में संहिता की संरचना के भीतर इस अधिकरण को प्रदत्त याचिका को पुनर्जीवित करने की शक्ति के प्रयोग के लिए कोई गुंजाइश है ।"

(III) **दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 63 और 64 के प्रभाव पर प्रत्यर्थियों के निवेदन :**

32. व्यावृत्ति खण्डों का विधायी आशय यह है कि वे याचिकाएं, जिनको सुरक्षित रखा गया, यथापूर्वोक्त 1956 के कम्पनी अधिनियम के अधीन कंपनी न्यायालय द्वारा सुनी जाएंगी ।

33. 2013 के कंपनी अधिनियम के व्यावृत्ति उपबंध अभिव्यक्त रूप से उपबंधित करते हैं कि कम्पनी न्यायालय की अधिकारिता और शक्तियां सुरक्षित याचिकाओं के अधीन कार्यवाहियों को स्थगित किए जाने की

शक्ति को सम्मिलित करते हुए सुरक्षित रहेंगी ।

34. यदि व्यावृत्ति उपबंध अर्थात् 2013 के अधिनियम की धारा 434(ङ) सपठित दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को एक साथ पढ़ा जाए, तो 2013 का अधिनियम निरर्थक हो जाएगा और इसलिए इन उपबंधों का निर्वचन इस प्रकार से किया जाना चाहिए ताकि 2013 के अधिनियम को निरर्थक होने से बचाया जा सके ।

35. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को सम्पूर्ण रूप से पढ़े जाने पर और उसका सामंजस्यपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण अर्थान्वयन किए जाने पर आवश्यक रूप से यह अर्थ निकलता है कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धाराएं 63 और 64 सुरक्षित याचिकाओं पर लागू नहीं की जा सकती ।

(IV) दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 :

36. जब दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन फाइल किया गया आवेदन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा सुनवाई के प्रयोजनार्थ ग्रहण कर लिया जाता है तो दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन ऋणस्थगन घोषित हो जाता है और वर्तमान कम्पनी याचिका को सम्मिलित करते हुए, समस्त कार्यवाहियां स्थगित हो जाती हैं । वर्तमान मामले में, इस न्यायालय ने अपनी वैवेकिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को सुनवाई के लिए ग्रहण करने के पूर्व स्थगित कर दिया । राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाही दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन ऋणस्थगन की घोषणा के पूर्व स्थगित हो चुकी है और इसलिए, सुरक्षित याचिकाओं पर धारा 14 के प्रभाव का प्रश्न नहीं उठता ।

37. वास्तव में, कम्पनी न्यायालय की समस्त आवश्यक और पारिणामिक शक्तियों के साथ इन परिसमापन याचिकाओं को सुरक्षित किए जाने का विधायी आशय इस कम्पनी न्यायालय को सुरक्षित याचिकाओं में यह निर्णीत करने के प्रयोजनार्थ कि क्या ऐसी कम्पनियों के संबंध में परिसमापन अधिकारिता को बनाए रखा जा सकता है या न्यायनिर्णयन प्राधिकारी को ऐसी कम्पनियों के संबंध में फाइल किए गए आवेदनों पर विचार करने की अनुज्ञा प्रदान की जा सकती है, के बाबत वैवेकिक शक्ति

प्रदान करना है । इस संदर्भ में यह भी सुसंगत है कि चूंकि व्यापार में सक्रिय लेनदार दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 21 के अधीन लेनदारों की समिति के भाग नहीं बनते और व्यापार में सक्रिय लेनदार कम्पनी के विरुद्ध परिसमापन कार्यवाहियों को प्रस्तावित किए जाने या उनको आरम्भ किए जाने के लिए नहीं कह सकते, वास्तव में, व्यापार में सक्रिय लेनदार दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन निश्चित रूप से हानि की स्थिति में होते हैं । तद्नुसार, उपर्युक्त मामलों में जहां ऐसे लेनदारों की पहल पर सुरक्षित याचिकाएं फाइल की जाती हैं, कम्पनी न्यायालय ऐसी सुरक्षित याचिकाओं को अपने पास सुरक्षित रखने और न्यायनिर्णयन प्राधिकारी को अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने के विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है ।

38. यह धारणा करते हुए कि इस प्रकार का प्रश्न उद्भूत हो सकता है, आपत्तिकर्ता ने यह निवेदन किया कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 और 2013 के अधिनियम के व्यावृत्ति उपबंधों का सामंजस्यपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण अर्थान्वयन आवश्यक रूप से ऐसे निर्वचन की ओर ले जाएगा कि ऋणस्थगन को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के असंगत उपबंध सुरक्षित याचिकाओं पर लागू नहीं होंगे । अन्यथा दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 का प्रभाव कम्पनी न्यायालय की अधिकारिता, जो 2013 के अधिनियम की धारा 434 के अधीन अभिव्यक्त और अपरिवर्तनीय रूप से सुरक्षित है, को अपरिवर्तनीय रूप से छीन लेगा ।

39. यह तथ्य की यदि कोई विपरीत दृष्टिकोण व्यक्त किया जाता है, तो कम्पनी न्यायालय की अधिकारिता अपरिवर्तनीय रूप से समाप्त हो जाएंगी, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 6 से 54 में स्पष्ट है, जिसके परिणामस्वरूप दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन कोई प्रस्ताव या कोई परिसमापन आरम्भ होता है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता में ऐसा कोई उपबंध समाविष्ट नहीं है जो धारा 14 के अधीन ऋणस्थगन का प्रभाव के समाप्त होने के पश्चात् सुरक्षित याचिकाओं को पुनर्जीवित कर सके ।

(V) उच्च न्यायालय सुरक्षित याचिकाओं के निस्तारण के प्रयोजनार्थ 1956 के अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करेगा :

40. उच्च न्यायालय को वर्तमान याचिका को सम्मिलित करते हुए सुरक्षित याचिकाओं के संबंध में कार्यवाहियों को सुनने और उनका

निस्तारण करने के प्रयोजनार्थ 1956 के अधिनियम के अधीन समस्त शक्तियों का प्रयोग करने का विशेषाधिकार प्राप्त है । तद्नुसार, उच्च न्यायालय को किसी भी अन्य न्यायालय में आरम्भ की जा चुकी या आरम्भ की जाने वाली कार्यवाहियों को स्थगित करने और/या निषिद्ध करने की शक्ति प्राप्त है ।

41. प्रत्यर्थी द्वारा यह विवादित नहीं किया गया है कि माननीय उच्च न्यायालय सुरक्षित याचिकाओं के संबंध में अपनी अधिकारिता और शक्तियों को प्रतिधारित रखता है ।

42. यह भी सुसंगत है कि केन्द्रीय सरकार ने तारीख 7 दिसम्बर, 2017 की अधिसूचना द्वारा 2013 के अधिनियम की धारा 434 को संशोधित करने के प्रयोजनार्थ 2016 का कम्पनी (कठिनाइयों का निराकरण), चौथा आदेश जारी किया जो अन्य बातों के साथ उपबंधित करता है कि :–

"2. कम्पनी अधिनियम, 2013, धारा 434 में, उपधारा (1) में, खंड (ग) में, परन्तुक के पश्चात्, निम्नलिखित परन्तुक अंतःस्थापित किए जाएंगे, अर्थात :

परन्तु आगे यह तब जबकि परिसमापन के अलावा वाले मामलों से संबंधित केवल वे कार्यवाहियां ....

परन्तु, आगे यह तब जबकि – (i) परिसमापन से संबंधित मामलों के अलावा कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन समस्त कार्यवाहियां ...., या (ii) कम्पनियों के परिसमापन से संबंधित कार्यवाहियां जो उच्च न्यायालयों से अन्तरित नहीं हुई हैं ;

कम्पनी अधिनियम, 1956 और कम्पनी (न्यायालय) नियम, 1959 के उपबंधों के अनुसार विचार किया जाएगा ।"

43. इस संबंध में कम्पनी न्यायालय की शक्तियां पूर्ण हैं, जैसा कि नीचे अभिकथित से स्पष्ट है :–

(क) कम्पनी न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को प्रतिधारित करेगा, जैसा कि कम्पनीज (न्यायालय) नियम, 1959 के नियम 9 द्वारा उपबंधित किया गया है –

9. इन नियमों में से किसी भी नियम के बारे में न्याय हित

के लिए या न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए निर्देश जारी किए जाने या आदेश पारित किए जाने, जैसा भी आवश्यक हो, न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों को सीमित करने या अन्यथा रूप से प्रभावित करने के प्रयोजनार्थ कोई भी धारणा नहीं की जाएगी ।

(ख) कम्पनी न्यायालय 1956 के अधिनियम की धारा 442 और 443 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी भी अन्य न्यायालय में कम्पनी के विरुद्ध कार्यवाहियों को स्थगित या निषिद्ध कर सकता है । धारा 442 इस प्रकार है –

"442. **रहने के लिए या कम्पनी के खिलाफ कार्यवाही को नियंत्रित करने के लिए कोर्ट की शक्ति** – एक समापन याचिका की प्रस्तुति के बाद और पहले किसी भी समय एक समापन किसी भी लेनदार या अंशदायी,

(क) कम्पनी के खिलाफ किसी भी वाद या कार्यवाही सर्वोच्च न्यायालय में या किसी उच्च न्यायालय में लंबित है जहां, वाद या कार्यवाही उसमें कार्यवाही के रहने के लिए लंबित है, किसी भी वाद या कार्यवाही किसी अन्य कोर्ट में कम्पनी के खिलाफ लंबित हैं, जहां

(ख) वाद या कार्यवाही में आगे की कार्यवाही को नियंत्रित करने के लिए, कंपनी के ऊपर हम यह ठीक समझे और जो आवेदन तो किया जाता है, करने के लिए कोर्ट में ऐसी शर्तों पर, तद्नुसार कार्यवाही रहना या नियंत्रित कर सकते हैं !"

(ग) यह स्वीकृत स्थिति है कि 1956 के अधिनियम की धारा 442 विधिमान्य और विद्यमान है और इसका 2002 के कम्पनीज़ (द्वितीय) संशोधन अधिनियम द्वारा विलोपन नहीं किया गया है । इसलिए भी, इस न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षों ने स्वीकार किया है कि 1956 के अधिनियम की धारा 442 के प्रयोजनार्थ राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के रूप में एक 'न्यायालय' है । इस संबंध में एम. सेंथिल कुमार और एक अन्य **बनाम** सुधा मिल्स (इंडिया) प्रा. लिमिटेड और अन्य (1995) एस. सी. सी. आनलाइन मद्रास 551 वाले मामले का अवलंब लिया गया जिसमें यह

अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यायालय किसी अन्य 'न्यायालय', जिसका अर्थान्वयन कम्पनी विधि बोर्ड को सम्मिलित करते हुए 'कोई न्यायनिर्णयन प्राधिकारी जिससे न्यायिक रूप से कार्य किया जाना अपेक्षित है और वह कम्पनी पर बाध्यकारी आदेश पारित करने के लिए सशक्त है' के रूप में किया गया है, में लम्बित कार्यवाहियों को स्थगित या निषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ धारा 442 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है ।

(घ) कम्पनी न्यायालय को धारा 443(1)(ग) के अधीन प्रदत्त शक्तियों के अधीन ऐसा अन्तरिम आदेश, जिसको वह परिसमापन का अंतिम आदेश पारित करने के प्रयोजनार्थ सहायता के रूप में पारित करना उचित समझे, पारित करने की शक्ति प्राप्त होती है । धारा 443 इस प्रकार है –

'443. **याचिका की सुनवाई पर ट्रिब्यूनल का पावर**

(1) एक समापन याचिका पर सुनवाई, ट्रिब्यूनल

(क) लागत के साथ या बिना, इसे खारिज, या

(ख) सशर्त या बिना शर्त सुनवाई स्थगित, या

(ग) यह ठीक समझे कि किसी भी अंतरिम आदेश बनाने, या

(घ) की लागत, या यह ठीक समझे कि किसी भी अन्य आदेश के साथ या बिना कम्पनी समापन के लिए एक आदेश बनाने,

बशर्ते ट्रिब्यूनल कंपनी कोई संपत्ति है कि कंपनी की संपत्ति उन परिसंपत्तियों से अधिक करने के लिए या में बराबर रकम को गिरवी किया गया है केवल उस जमीन पर एक समापन और नहीं करेंगे,

यह कुछ अन्य उपाय करने के लिए उपलब्ध है राय है कि अगर

(2)............

(3) ....।'

(ङ) 1956 के अधिनियम की धारा 442 और 443 के अधीन न्यायालय को प्रदत्त शक्तियां उच्च न्यायालय को इस अधिनियम की धारा 446 और 466 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रभावी ढंग से प्रयोग करने के प्रयोजनार्थ सहायता प्रदान करने के लिए हैं । आगे शासकीय परिसमापक **बनाम** धरती धन लिमिटेड (1977) 2 एस. सी. सी. 166 वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि इन उपबंधों का उद्देश्य न्यायालय, जहां परिसमापन कार्यवाही चल रही है, से तीव्र गति से न्यायनिर्णयन प्राप्त करने का अधिकार सृजित करना है ।

(च) कम्पनी न्यायालय परिसमापन की अंतिम अवस्था पर 1956 के अधिनियम की धारा 446 और 466 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । जैसा कि धारा 446 और 466 के उपबंधों में देखा जा सकता है, कम्पनी न्यायालय की शक्तियां अत्यधिक व्यापक हैं । इसके अतिरिक्त, धारा 466(1) कम्पनी न्यायालय को किसी भी समय बिन्दु पर परिसमापन आदेश पारित करने के पश्चात् परिसमापन के संबंध में किसी या समस्त कार्यवाहियों को उस समय-सीमा के लिए, जैसा कि न्यायालय उचित समझे, स्थगित करने या कोई आदेश पारित करने के लिए सशक्त करती है ।

(VI) **तारीख 19 जुलाई, 2017 का आक्षेपित आदेश :**

44. माननीय न्यायमूर्ति श्री आर. डी. भानूका और माननीय न्यायमूर्ति श्री ए. एस. गड़करी ने तारीख 9 मार्च, 2017 के आदेश (जिसको इसमें इसके पश्चात् "सुनवाई के लिए ग्रहण करने वाला आदेश" कहा गया है) और तारीख 19 जुलाई, 2017 के आदेश (जिसको इसमें इसके पश्चात् "स्थगन आदेश" कहा गया है) पारित करते हुए अपनी पूर्वोक्त वैवेकिक शक्तियों का प्रयोग सम्यक् रूप से किया ।

45. इस न्यायालय ने सुनवाई के लिए ग्रहण करने वाले आदेश में सुसंगत तथ्यों पर विचार किया है और 1956 के अधिनियम की धारा 442 और 443 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग प्रत्यर्थी को राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण की शरण में जाने से निषिद्ध करने के प्रयोजनार्थ किया है । माननीय न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी-आवेदक के आवेदन को पुनर्जीवित किए जाने की संभाव्यता के संदर्भ में मताभिव्यक्ति की कि कारपोरेट ऋण पुनर्गठन योजना को क्रियान्वित नहीं किया जा सका और इसलिए, प्रथम दृष्ट्या प्रत्यर्थी-आवेदक के आवेदन को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता ।

46. माननीय न्यायमूर्ति श्री ए. एस. गड़करी ने स्थगन आदेश पारित करते हुए 1956 के अधिनियम की धारा 442 और 443 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया और जो अभिनिर्धारित किया वह निम्नलिखित हैं :–

> "1. मामले को वाद सूची के माध्यम से तारीख 26 जुलाई, 2017 के लिए परिचालित किया जाए । वाद सूची में इस मामले को शीर्ष पर रखा जाए ।
>
> 2. इस दौरान राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण, अहमदाबाद को निर्देषित किया जाता है कि वे कम्पनी पिटिशन (आई. बी.) संख्या 37, सन् 2017 में आगे की कार्यवाही न करे ।"

(VII) 1956 के अधिनियम और 2013 के अधिनियम और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता का सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन :

47. सुरक्षित याचिकाओं के संबंध में 1956 के अधिनियम, 2013 का अधिनियम और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों को सामंजस्यपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण तरीके में पढ़ा जाना चाहिए । वास्तव में, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण न्यायनिर्णयाक प्राधिकारी होने के कारण 2013 के अधिनियम के उपबंधों से शक्तियां प्राप्त करता है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 5(1) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित करती है :–

> "न्यायनिर्णयन प्राधिकरण से इस भाग के प्रयोजनों के लिए कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 408 के अधीन गठित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण अभिप्रेत है ।"

न्यायनिर्णयक प्राधिकरण की शक्तियां 2013 के अधिनियम के उपबंधों से अध्याय 27 में धारा 407-434 के अधीन प्राप्त की जाती हैं ।

48. परस्पर विरोधी पक्षों के काउंसेलों को सुनने के पश्चात् मैं श्री द्वारकादास द्वारा किए गए निवेदनों से सहमत होने के लिए आनत हूं । श्री द्वारकादास और मेरे विचार इस प्रकार हैं :

(I) पृष्ठभूमि और उद्देश्य – दिवाला संहिता का प्रयोजन :

49. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड**

(उपरोक्त) वाले मामले में इस बात की गहराईपूर्वक जांच करने के प्रयोजनार्थ कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को क्यों अधिनियमित किया गया और इसको किन प्रयोजनों के लिए अधिनियमित किया गया, दिवाला विधि सुधार समिति, 2015 की रिपोर्ट को निर्दिष्ट किया है । संक्षेप में, सुधार समिति ने इस बात का परीक्षण किया कि क्या किसी कम्पनी, जिसने अपने ऋण संबंधी दायित्वों के पुनर्संदाय में चूक कारित की है जबकि प्रतिभूत लेनदार स्थिरीकृत आस्तियों, जो उनको गिरवी की गई थीं, का पुनः कब्जा लेने के योग्य हैं, ऐसे अनेक लेनदार और ऋणदाता है, जो प्रतिभूत ऋणदाता नहीं हैं और जब चूक की जाती है, तो ऋणदाता शुद्ध वर्तमान मूल्य (एन. पी. वी.) आधार पर ऋण के केवल 20 प्रतिशत मूल्य की वसूली कर पाने में समर्थ होते हैं । संक्षेप में, सुधार समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि वे उद्योग, जिनका मजबूत आस्ति आधार नहीं है, को ऋण की सुविधा से वंचित किया जा रहा है जिसके कारण कारपोरेट्स (निगमित निकायों) के लिए लम्बी अवधि के कारपोरेट बंधपत्र (असुरक्षित) जारी किए जाने के द्वारा वित्त जुटाना, जो अधिकांश अवसंरचना परियोजनाओं के लिए अत्यावश्यक है, कठिन होता जा रहा है । सुधार समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि जहां कोई चूक घटित होती है तो असुरक्षित उधार देने वाला या तो कम्पनी को परिसमापन की ओर ले जाएगा या जहां लेनदार इस आशा में कि समझौते के आधार पर निकाला गया मूल्य परिसमापन मूल्य से अधिक है, शुद्ध वर्तमान मूल्य के आधार पर घटी हुई रकम स्वीकार कर लेते हैं तो ऋण के पुनर्गठन के लिए समझौता करेगा । तीसरी संभाव्यता यह होगी कि चूक करने वाली फर्म को एक चलते हुए समुत्थान के रूप में बेच दिया जाए । इन व्यापक कोटियों के अनेक मिश्रित पुनर्गठनों पर विचार किया जा सकता है । सुधार समिति ने परीक्षण के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि यह उत्तम विकल्प होगा कि केवल एक फोरम इन सभी संभाव्यताओं का मूल्यांकन करे और निर्णय ले, जो सुधार समिति के विचार में "लेनदारों की समिति" है जिसमें सभी वित्तीय लेनदारों को वह ऋण जो उन्होंने दिया हुआ है, के परिमाण के अनुपात में अपने पक्ष को रखने का हक है । लेनदारों की समिति के विचार में किसी चूक करने वाली फर्म के साथ क्या बर्ताव होना चाहिए, एक कारोबारी विनिश्चय है और ऐसा विनिश्चय केवल लेनदारों को ही लेना चाहिए । सुधार समिति ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि परिसमापन प्रक्रिया के क्रियान्वयन में होने वाले विलम्ब, जिसके कारण परिसमापन में समय के साथ-साथ ह्रास की उच्च

आर्थिक दर के कारण मूल्य गिरता जाता है, के कारण समस्या का कोई व्यवहारिक हल नहीं है । जैसा कि **इनोवेटिव** (उपरोक्त) वाले मामले के पृष्ठ 7 पर उल्लिखित है, सुधार समिति ने आगे अधिकथित किया :–

> "समिति का विश्वास है कि इस प्रकार की संभाव्यताओं के अधिमूल्यन के लिए और उनके आधार पर विनिश्चय करने के लिए केवल एक ही सही फोरम है : जो लेनदारों की समिति है, जहां सभी वित्तीय लेनदार उस ऋण के परिमाण के अनुपात में, जो उन्होंने दिया हुआ है, अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं । विगत वर्षों में भारत में सरकार (विधायिका, कार्यपालिका या न्यायपालिका) ने इस प्रश्न के विनिर्धारण के लिए विधि के रूप से आयुध अर्जित किए हैं । समिति ने इसको कड़ाईपूर्वक टालने का प्रयास किया है । किसी चूककर्ता फर्म का समुचित प्रबंधन एक कारोबारी विनिश्चय होता है और यह विनिश्चिय केवल लेनदारों द्वारा लिया जाना चाहिए ।"

समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि लेनदारों और देनदारों को यह निर्णय लेने और समस्या को पूर्ण रूप से समझने और इस संबंध में लिए गए निर्णयों पर सहमत होने की स्वतंत्रता होनी चाहिए कि क्या वह चूककर्ता इकाई वित्तीय असफलता या कारोबारी असफलता का सामना कर रही थी और क्या उसको पुनर्जीवित किया जा सकता है । सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन, जो लाया जा सकता है, यह है कि जब कम्पनी अपने ऋणों को संदाय में चूक करती है, तो प्रबंधतंत्र, जो चूक के बाद भी कम्पनी का नियंत्रण अपने पास रखे हुए हैं, के बजाय कम्पनी का नियंत्रण लेनदारों को अंतरित कर दिया जाना चाहिए । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उद्देश्य और प्रयोजन, जिसके लिए इसको अधिनियमित किया गया था, को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि इसको दिवाला और शोधन समाधान प्रक्रिया जिसको दिवाला समाधान वृत्तिक की नियुक्ति द्वारा और लेनदारों की समिति के सृजन द्वारा कड़ाईपूर्वक समयबद्ध तरीके में क्रियान्वित किया जाना है, को स्थापित करने के लिए अधिनियमित किया गया । यही वे शक्तियां हैं जिनका प्रयोग राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा किया जा सकता है और न कि कम्पनी न्यायालय द्वारा । यही वह कारण है कि दिवाला समाधान प्रक्रिया के लम्बन के दौरान दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन ऋणस्थगन को उपबंधित किया गया है । इसलिए, कम्पनी अधिनियम और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के मध्य जो सर्वाधिक मूल विभेद है, वह यह है कि जबकि कम्पनी

अधिनियम के अधीन परिसमापन का मामला न्यायालय द्वारा अकेले निर्णीत किया जा सकता है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन इसमें पूर्ण रूप से परिवर्तन कर दिया गया चूंकि यह संहिता कम्पनी के प्रबंधतंत्र को विस्थापित करती है और दिवाला समाधान वृत्तिक की नियुक्ति की जाती है और लेनदारों की समिति पर कम्पनी के भाग्य का निर्णय छोड़ दिया जाता है ।

(II) रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के मध्य व्यापक रूप से तुलना :

50. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को अधिनियमित किए जाने के पूर्व रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत यह अपेक्षित था कि जिन कम्पनियों को रुग्ण औद्योगिक कम्पनी के रूप में परिभाषित कर दिया गया है, वे कम्पनियां औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष संदर्भ फाइल करें । यदि एक बार कोई संदर्भ फाइल कर दिया जाता था, तो रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22 के अधीन ऋणस्थगन लागू हो जाता था जिसके परिणामस्वरूप समस्त कार्यवाहियां जैसे कि परिसमापन, निष्पादन और इसी प्रकार की अन्य कार्यवाहियां न तो फाइल की जा सकती थीं और यदि फाइल कर भी दी जाती थीं तो उन पर कोई कार्यवाही नहीं हो सकती थी । तथापि, रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम सभी कम्पनियों पर लागू नहीं होता था । यह केवल उन औद्योगिक उपक्रमों पर लागू होता था जिनको उक्त अधिनियम की अनुसूची में वर्णित किया गया था । अनुभव से यह दर्शित होता है कि यद्यपि रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम को रुग्ण कम्पनियों को पुनर्जीवित किए जाने के प्रशंसनीय उद्देश्य के साथ अधिनियमित किया गया था, फिर भी कम्पनी के प्रवर्तकों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा रहा था, जो धारा 22 के अधीन उपलब्ध ऋणस्थगन के कारण लम्बित कार्यवाहियों को या तो औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड या औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन अपील प्राधिकरण के समक्ष किसी न किसी कारणवश अनिश्चितकाल के लिए लम्बित रखे हुए थे जिस कारणवश अधिनियम का उद्देश्य और प्रयोजन विफल हो गया था और लेनदारों के अधिकार विफल हो गए थे । इसके विपरीत दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) और **मोबीलाक्स इनोवेशन्स (प्राइवेट) लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, में अनेक लक्षण हैं जो रुग्ण औद्योगिक कम्पनी

अधिनियम की विफलताओं के मुकाबले में लाभदायक परिणाम दर्शित करता हैं । संक्षेप में वे इस प्रकार हैं :–

"(i) दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता सभी कम्पनियों (पब्लिक और प्राइवेट) पर लागू होती है ;

(ii) चूंकि अब यह सुस्थापित हो चुका है कि किसी भी कम्पनी में शेयरधारकों के अलावा भी अनेक पण्यधारी होते हैं जैसे कि कर्मकार, लेनदार इत्यादि, जैसा कि नेशनल टेक्सटाइल्स वर्कर्स यूनियन **बनाम** पी. आर. रामकृष्णन और अन्य (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, कोई कम्पनी जिसने अस्थाई रूप से वित्तीय गतिरोध का सामना किया है, को अस्थाई रूप से दंडस्थगन का लाभ प्रदान किए जाने के द्वारा अपने पैरों पर पुनः खड़े होने का अवसर प्रदान किए जाने के द्वारा पुनर्जीवित किया जा सकता है ।

(iii) जैसा कि 1956 के अधिनियम या 2013 के अधिनियम के तत्कालीन परिसमापन उपबंधों के मामलों में होता था जहां कोई एकल लेनदार, जिसका ऋण निर्विवादित था, किसी कंपनी का परिसमापन करा सकता था और इस प्रकार उस कंपनी की असामयिक रूप से मृत्यु कारित करा सकता था, इसके विपरीत दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत आज्ञापक रूप से यह अपेक्षा की गई है कि दिवाला समाधान वृत्तिक की नियुक्ति के द्वारा कम्पनी को पुनर्जीवित करने का एक प्रयास किया जाए जो इस बात का परीक्षण करे कि क्या ऐसी कम्पनी को पुनर्जीवित किया जा सकता है ।

(iv) दिवाला समाधान की प्रक्रिया कड़ाईपूर्वक समयबद्ध होती है और जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इनोवेटिव (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, 'शोधन संहिता' के कार्यकरण के लिए गति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि संहिता में विहित समय-सीमाओं में किसी भी प्रकार से शिथिलता प्रदान नहीं की जा सकती ।

(v) समाधान प्रक्रिया लागू किए जाने के प्रयास की आरम्भिक अवधि याचिका को सुनवाई के प्रयोजनार्थ ग्रहण किए जाने की तारीख से 180 दिन है जिसको 90 दिनों की अतिरिक्त अवधि द्वारा केवल तब विस्तारित किया जा सकता है यदि लेनदारों की समिति के

75 प्रतिशत लोग इसके लिए सहमति प्रदान कर देते हैं ।

(vi) तथापि, जो बात अत्यधिक महत्व की है, यह है कि रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की भांति यदि एक बार किसी वित्तीय/ कारबार लेनदार द्वारा दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन आवेदन फाइल कर दिया जाता है और वह सुनवाई के लिए ग्रहण हो जाता है, तो कम्पनी का निदेशक मंडल तुरन्त ही विस्थापित हो जाता है और कम्पनी का प्रबंध दिवाला समाधान वृत्तिक के अधीन हो जाता है ।

(vii) किसी दिवाला समाधान वृत्तिक के कार्य, शक्तियां और कर्तव्य ये हैं कि वह 'किसी भी व्यक्ति' से प्रश्नगत कंपनी के समाधान/पुनर्जीवन के लिए प्रस्ताव आमंत्रित करे जिसको कंपनी और उसके समस्त लेनदारों पर बाध्यकारी होने के प्रयोजनार्थ वित्तीय लेनदारों की समिति के 75 प्रतिशत बहुसंख्यकों द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए ।

(viii) यदि इसके विपरीत, (क) राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण को दिवाला समाधान प्रक्रिया अवधि के 180 दिनों की अवधि के व्यतीत होने के भीतर या इसको 90 दिनों की अवधि द्वारा पुनः विस्तारित किए जाने के बाद भी दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 30(6) के अधीन कोई समाधान योजना प्राप्त नहीं होती है, या (ख) वह धारा 31 के अधीन समाधान योजना को उसमें विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं के अननुपालन के कारण अस्वीकृत कर देता है या (ग) समाधान वृत्तिक राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण को सूचित करता है कि लेनदारों की समिति कारपोरेट देनदार के परिसमापन का निर्णय ले या (घ) राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण द्वारा अनुमोदित समाधान योजना का संबंधित कारपोरेट देनदार द्वारा अतिलंघन किया गया है और कोई भी व्यक्ति जो ऐसे किसी अतिलंघन द्वारा प्रतिकूल रूप से प्रभावित है, आवेदन प्रस्तुत करता है और उस आवेदन के विनिर्धारण पर यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि इस प्रकार का अतिलंघन हुआ है, तो राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 33 के अधीन परिसमापन का आदेश पारित कर देगा । राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण से आज्ञापक रूप से यह अपेक्षित है कि वह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 33(ख)(i) और (ii) और (iii) के अधीन परिसमापन का आदेश पारित

करे ।"

(III) दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को अन्य विधियों के मुकाबले प्रमुखता प्राप्त है :

51. जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **मदुरा कोर्ट्स लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम के प्रभावी होने की अवधि के दौरान यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस अधिनियम को कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर प्रमुखता प्राप्त है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 252 को दृष्टि में रखते हुए रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम को तारीख 1 दिसम्बर, 2016 से निरसित किया जा चुका है । उक्त निरसित अधिनियम की धारा 4(ख) के अधीन औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड/ औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन अपीली प्राधिकरण के समक्ष लम्बित समस्त कार्यवाहियां उपशमित (समाप्त) हो गईं और उन उपशमित कार्यवाहियों के संबंध में कम्पनी को अनुज्ञा प्रदान करते हुए तारीख 1 दिसम्बर, 2016 से 180 दिनों की अवधि के भीतर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष संदर्भ प्रस्तुत करने के लिए उपबंध बनाए गए हैं, जिस संदर्भ के लिए यह अपेक्षित है कि उस पर दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के अनुसार विचार किया जाए ।

52. वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी-आवेदक ने एक संदर्भ फाइल किया जो रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम को निरसित किए जाने के पूर्व औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष लम्बित था । प्रत्यर्थी-आवेदक ने 180 दिनों की विहित अवधि के भीतर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया । निश्चित रूप से याची के काउंसेल ने यह शिकायत प्रस्तुत की कि प्रत्यर्थी-आवेदक ने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने के लिए अंतिम कुछ दिनों तक प्रतीक्षा की थी और इस न्यायालय ने प्रतीक्षा करने के लिए और अधिक समय प्रदान करने से इनकार कर दिया था जब तक कि कम्पनी ने राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत नहीं कर दिया । मेरे विचार में, यह सभी कुछ असुसंगत है जब तक कि धारा 10 के अधीन फाइल किया गया आवेदन समय-सीमा के अन्तर्गत फाइल न किया गया हो ।

53. अब, उच्चतम न्यायालय द्वारा **बैंक आफ न्यूयार्क मेल्लोन** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित कर दिया है कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 252 को दृष्टि में रखते हुए किसी ऐसी कम्पनी के मामले में भी जहां परिसमापन का आदेश पारित किया जा चुका है, कम्पनी, जिसके बारे में यह धारणा की गई थी कि उसका संदर्भ औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष लम्बित है, को यह अधिकार है कि वह राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन उपलब्ध अनुतोषों की ईप्सा कर सके ।

(IV) **विद्यमान परिसमापन कार्यवाहियों को प्रमुखता न प्रदान किया जाना :**

54. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 252 ने 2003 के रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) निरसन अधिनियम को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट तरीके में संशोधित कर दिया है । 8वीं अनुसूची जो उपबंधित करती है, वह निम्नलिखित है :–

> "**धारा 4 के उपखंड (ख) के स्थान पर निम्नलिखित उपखंड रखा जाएगा, अर्थात्** –
>
> (ख) इस निमित्त केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसी तारीख, जो अधिसूचित की जाए, रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 (1986 का 1) के अधीन अपील अधिकरण को की गई कोई अपील या कोई प्रतिनिर्देश या बोर्ड को या उसके समक्ष लम्बित कोई जांच या कोई कार्यवाही चाहे वो किसी भी प्रकृति की हों, उपशमित हो जाएगी :
>
> परन्तु किसी कम्पनी जिसके संबंध में ऐसी अपील या प्रतिनिर्देश या जांच इस खंड के अधीन समाप्त की गई है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता अधिनियम, 2016 के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता अधिनियम, 2016 के उपबंधों के अनुसरण में दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता अधिनियम, 2016 के प्रारम्भ की तारीख से 180 दिन के भीतर निर्दिष्ट हो सकेगा ।"

55. प्रतिस्थापित धारा 4(ख) का प्रभाव यह है कि कम्पनी को अभिव्यक्त रूप से राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष दिवाला और

शोधन अक्षमता संहिता के आरम्भ की तारीख अर्थात् 1 दिसम्बर, 2016 से 180 दिनों के भीतर संदर्भ प्रस्तुत करने की शक्ति प्रदान की जाए जिस संदर्भ पर '2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के अनुसार' विचार किया जाएगा ।

56. यदि याची द्वारा जो दलीलें दी गई हैं, सही हैं, तो किसी कम्पनी द्वारा किसी ऐसी स्थिति में जहां कम्पनी के विरुद्ध परिसमापन याचिका फाइल किए जाने के पश्चात् जारी की गई नोटिस 1956 के कम्पनी अधिनियम द्वारा शासित है (और जिसको कम्पनी न्यायालय द्वारा प्रतिधारित कर लिया गया है), दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 252 के उपबंधों के अधीन प्रस्तुत किए गए संदर्भ पर राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा विचार नहीं किया जा सकता और यदि विचार किया भी जाता है तो वह अकृत होगा । इस निर्वचन की अपेक्षा के लिए 1956 के कम्पनी अधिनियम के किसी सारभूत उपबंध को अभिव्यक्त या सारगर्भित रुप से सुरक्षित नहीं किया गया है ।

(V) **परिसमापन याचिका को सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने का यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियां स्थगित हो गई हैं :**

57. श्री द्वारकादास ने निवेदन किया और जिससे मैं सहमत भी हूं कि अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय द्वारा परिसमापन याचिका को सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने का यह अर्थ नहीं होगा कि राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण की अधिकारिता समाप्त हो गई है या वह किसी ऐसी याचिका के मामले में अपनी अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकता जिसको किसी अन्य लेनदार (दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 10 के अधीन वित्तीय, व्यापार संबंधी या स्वयं कम्पनी) द्वारा फाइल किया गया है । विधान-मंडल से यह धारणा की जाती है कि वह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों को अधिनियमित करते समय विद्यमान विधि, अर्थात् कम्पनी विधि के उपबंधों के प्रति जागरूक था (**काम्पिटीशन कमीशन आफ इंडिया** बनाम **स्टील अथारिटी आफ इंडिया**[1]) और साथ ही यह तथ्य कि कम्पनी याचिकाएं जिनको दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के प्रभाव में आने के पूर्व फाइल किया गया है, को अधिकारिताप्राप्त उच्च न्यायालय में अंतिम निस्तारण के लिए लम्बित रखते हुए सुनवाई के

[1] (2010) 10 एस. सी. सी. 744.

लिए ग्रहण किया जा सकता है ।

58. जैसा कि **वेस्ट हिल्स रियलिटी प्रा. लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले तारीख 23 दिसम्बर, 2016 के असम्प्रकाशित निर्णय में न्यायमूर्ति गुप्ता द्वारा अभिनिर्धारित किया गया, तारीख 7 दिसम्बर, 2016 के कार्यवाही अंतरण नियम में यह उपबंधित किया गया है कि वे परिसमापन याचिकाएं, जिनके संबंध में प्रत्यर्थी कम्पनी को नोटिस जारी किया जा चुका है या जिनको सुनवाई के लिए ग्रहण किया जा चुका है, अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय के समक्ष ही लम्बित रहेंगी जबकि अन्य सभी परिसमापन याचिकाएं राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को अंतरित हो जाएंगी ।

59. यदि विधान-मंडल का यह आशय था कि वे परिसमापन याचिकाएं जिनको किसी अन्य लेनदार द्वारा उसी कम्पनी के संबंध में फाइल किया गया है, जिनकी सुनवाई करने से अधिकारिताप्राप्त उच्च न्यायालय की अधिकारिता समाप्त हो चुकी है, और उन याचिकाओं को राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों में प्राथमिकता के आधार पर सुना जाएगा, तो विधान-मंडल या तो दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता में या अन्तरण नियम अधिसूचना में इस बात को स्पष्ट करता ।

60. इसके विपरीत, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) के उपबंध उपदर्शित करते हैं कि विधान-मंडल का यह आशय कदापि नहीं था कि कंपनी न्यायालय को राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों के विरुद्ध व्यादेश देने की शक्ति होगी । इसके अलावा, जब दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता को अधिनियमित किया गया और रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम के उपबंधों को तारीख 21 दिसम्बर, 2016 की अधिसूचना द्वारा निरसित किया गया तो वे कम्पनियां जिन्होंने रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम के अधीन संदर्भ फाइल किया था, को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों के अधीन याचिका फाइल करने के लिए 180 दिनों की अवधि प्रदान की गई थी । अतः ऋणस्थगन की अवधि, जो रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम की धारा 22 के परिणामस्वरूप परिसमापन कार्यवाही के रूप में क्रियान्वित हो रही थी, को उक्त अधिसूचना द्वारा विहित अवधि में दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन जारी रखा जा सकता था (यदि राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण द्वारा ऐसा किया जाना उचित पाया जाता) ।

61. यह उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है कि तारीख 19 जून, 2015 को प्रत्यर्थी-आवेदक ने रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम की धारा 15(1) के अधीन औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष संदर्भ फाइल किया था । इस संदर्भ को तारीख 9 सितम्बर, 2015 को रजिस्ट्रीकृत किया गया था जिसमें दो बार सुनवाई हुई । तारीख 1 दिसम्बर, 2016 को रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम को निरसित कर दिया गया । तारीख 29 मई, 2017 को प्रत्यर्थी-आवेदक ने राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण, अहमदाबाद के समक्ष धारा 10 के अधीन याचिका फाइल की अर्थात् 180 दिनों की विहित अवधि के भीतर ।

62. वास्तव में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मदुरा कोट्स लिमिटेड** बनाम **मोदी रबड़ लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम के उपबंध कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी होंगे और कम्पनी अधिनियम के अधीन कार्यवाही रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम के अर्न्तगत कार्यवाहियों के लिए मार्ग प्रशस्त करेंगी । इसलिए, चूंकि रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम निरसित हो चुका है और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता द्वारा प्रतिस्थापित किया जा चुका है (दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की अनुसूची VIII सपठित धारा 252), दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध 2013 के कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर अभिभावी होंगे ।

(VI) **निरसन का प्रभाव :**

63. धारा 255 सपठित दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की 11वीं अनुसूची ने 2013 के कम्पनी अधिनियम को संशोधित कर दिया है ।

11वीं अनुसूची में खंड 34(ग) निम्नलिखित उपबंधित करता है :–

> 34. धारा 434 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् :–
>
> 434. **कतिपय लम्बित कार्यवाहियों का अंतरण** –
>
> (1) ऐसी तारीख को जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित अधिसूचित की जाए :–
>
> (क) ....
>
> (ख) ....

(ग) कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन सभी कार्यवाहियां, जिनके अन्तर्गत माध्यस्थम्, समझौता, ठहराव और पुनर्संरचना और कम्पनी के परिसमापन से संबंधित कार्यवाहियां भी हैं, जो उस तारीख से ठीक पूर्व किसी जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित हैं, अधिकरण को अंतरित हो जाएंगी और अधिकरण उन कार्यवाहियों पर उनके अंतरण से पहले के प्रक्रम से कार्यवाही कर सकेगी :

परन्तु कंपनियों के परिसमापन से संबंधित केवल ऐसी कार्यवाहियां ही अधिकरण को अंतरित की जाएंगी, जो ऐसे प्रक्रम पर हैं, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए ।

64. 2013 के कम्पनी अधिनियम की धारा 434 की उपधाराओं (1) और (2) सपठित दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 239 की उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन जारी तारीख 7 दिसम्बर, 2016 की अधिसूचना अभिकथित करती है कि :–

"5. ऋणों के संदाय में असमर्थता का आधार पर परिसमापन की लम्बित कार्यवाहियों का अंतरण –

(1) उच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित ऋणों के संदाय में असमर्थता के आधार पर अधिनियम की धारा 433 के खंड (ङ) के अधीन परिसमापन से संबंधित समस्त याचिकाएं और जहां याचिका की तामीली प्रत्यर्थी पर नहीं हुई है, जैसा कि 1959 के कम्पनीज़ (न्यायालय) नियम 26 के अधीन अपेक्षित है, अधिनियम की धारा 419 की उपधारा (4) के अधीन स्थापित अधिकारिता का प्रयोग करने वाले अधिकरण की न्यायपीठ को अंतरित हो जाएंगे और ऐसी याचिकाओं को संहिता की धारा 7, 8 या 9 के अधीन आवेदन, जैसा भी मामला हो, माना जाएगा और उन पर संहिता के भाग 2 के अनुसार विचार किया जाएगा –

....

6. ऋणों के संदाय में असमर्थता के अलावा अन्य आधारों पर परिसमापन के मामलों की लम्बित कार्यवाहियों का अंतरण :

उच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित 1956 के कम्पनी अधिनियम

की धारा 433 के खंड (क) और (च) के अधीन फाइल की गई समस्त याचिकाएं और जहां याचिकाओं की तामीली प्रत्यर्थी पर नहीं हुई है, जैसा कि 1959 के कम्पनीज़ (न्यायालय) नियम 26 के अधीन अपेक्षित है, क्षेत्रीय अधिकारिता का प्रयोग करने वाले अधिकरण की न्यायपीठ को अंतरित हो जाएंगे और ऐसी याचिकाओं को 2013 के कम्पनी अधिनियम (2013 का 18) के उपबंधों के अधीन याचिका प्रतीत किया जाएगा ।"

65. 2013 के कम्पनी अधिनियम की धारा 470 की उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए 2016 के कम्पनी (कठिनाइयों का निराकरण) चौथा आदेश में निम्नलिखित अभिकथित है :–

"1. **संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ** – (1) इस आदेश को कम्पनी (कठिनाइयों का निराकरण) चौथा आदेश, 2016 कहा जाएगा ।

(2) यह तारीख 15 दिसम्बर, 2016 को प्रभावी होगा ।

2. 2013 के कम्पनी अधिनियम में, धारा 434 में, उपधारा (1), खंड (ग) में, परन्तुक के पश्चात् निम्नलिखित परन्तुक अन्तःस्थापित किए जाएंगे, अर्थात् :–

....

परन्तु आगे यह कि - (i) .... ; या

(ii) कम्पनी के परिसमापन से संबंधित कार्यवाहियां जिनको उच्च न्यायालयों से अन्तरित नहीं किया गया है;

पर 1956 के कम्पनी अधिनियम और 1959 के कम्पनीज़ (न्यायालय) नियम के उपबंधों के अनुसार विचार किया जाएगा ।"

66. पूर्वोक्त अधिसूचनाओं को पढ़े जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे परिसमापन कार्यवाहियां (जिनको राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण को अंतरित कर दिया गया), जिनके संबंध में नोटिस तामील नहीं हुआ है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों द्वारा शासित होगी, वे परिसमापन कार्यवाहियां (जिनको उच्च न्यायालय द्वारा रोक लिया गया) जिनके संबंध में नोटिस तामील हो चुकी है, पर "1956 के कम्पनी अधिनियम और 1959 के कम्पनीज़ (न्यायालय) नियम के उपबंधों के अनुसार विचार किया जाएगा" ।

67. यह तथ्य कि वे परिसमापन याचिकाएं, जिनमें नोटिस की तामीली हो चुकी है, 1956 के कम्पनी अधिनियम द्वारा शासित होती रहेंगी, का अर्थ यह है कि उन कार्यवाहियों पर 1956 का कम्पनी अधिनियम लागू होगा । फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि किसी ऐसी परिसमापन याचिका, जिसमें नोटिस की तामीली हो चुकी है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन कोई नई कार्यवाही फाइल की जाती है और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14 के अधीन आदेश पारित कर दिए जाते हैं, तो दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन उपबंधित परिणाम उन कार्यवाहियों के संबंध में लागू नहीं होंगे जिनमें नोटिस तामील हो चुके हैं, चाहे वे कार्यवाहियां किसी भी प्रक्रम पर हों । वास्तव में, यदि याची की दलीलों को स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 6 द्वारा आच्छादित किसी व्यक्ति को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन उस कम्पनी के संबंध में कार्यवाही फाइल करने का कोई अधिकार उपलब्ध नहीं होगा, जिसके विरुद्ध उच्च न्यायालय द्वारा परिसमापन याचिका को विचारार्थ रोक लिया गया है । इस प्रकार के किसी भी निर्वचन को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की भाषा द्वारा समर्थन प्राप्त नहीं है ।

68. इसके अलावा, विधान-मंडल का यह अभिव्यक्त और सारगर्भित आशय है कि (i) 1956 के कम्पनी अधिनियम के अधीन परिसमापन याचिका फाइल करने का अधिकार वापस ले लिया जाए; और (ii) दिवाला समाधान और कम्पनियों को पुनर्जीवित किए जाने के संबंध में आरम्भ की गई समस्त कार्यवाहियों को अपवर्जित किए बिना दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों को लागू किया जाए । यह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14, 63 और 64(2) में अभिव्यक्त भाषा से स्पष्ट है ।

69. यह कम्पनी (कठिनाइयों का निराकरण) चौथा आदेश से भी स्पष्ट है कि वास्तव में जिसको सुरक्षित किया गया है, वह केवल परिसमापन याचिकाएं हैं जो अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालयों के समक्ष लम्बित हैं और न कि स्वयमेव वह कम्पनी जिसके संबंध में इस प्रकार की कार्यवाहियों को सुरक्षित किया गया है । कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार की कम्पनी अभी भी दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंधों, यदि उनका अवलंब लिया जाता है, के अध्यधीन है और वे परिसमापन

कार्यवाहियां जिनके संबंध में नोटिस तामील हो चुकी और जिनको उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिधारित किया गया है, सुरक्षित हैं । इसका यह अर्थ नहीं है दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता उक्त कम्पनी के संबंध में, यदि उसका अवलंब लिया जाता है, लागू नहीं होगी ।

70. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि वे परिसमापन याचिकाएं जिनको उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिधारित किया गया है, 1956 के कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत निर्णीत की जा रही हैं । केवल यह उपबंधित किया गया है कि धारा 433(1)(ङ) के अधीन उच्च न्यायालय में लम्बित परिसमापन कार्यवाहियां उच्च न्यायालय में ही चलती रहेंगी **प्रशान्त कुमार मित्रा** (उपरोक्त) वाला मामला ।

71. इसके अतिरिक्त, यह संक्रमणकाल वाला उपबंध दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन किसी व्यक्ति और साथ ही उस कम्पनी, जिसके विरुद्ध परिसमापन याचिका फाइल की गई है और उच्च न्यायालय में प्रतिधारित है, को उपलब्ध अनुतोषों को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं कर सकता चूंकि इसका अर्थ यह होगा कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के बारे में यह प्रतीत कर लिया गया है कि वह कानून की पुस्तक में विद्यमान ही नहीं है और लोग नए विधायन का लाभ प्राप्त करने से वंचित हो जाएंगे । यह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की सपाट भाषा के विपरीत होगा । यदि याची की दलीलों को स्वीकार कर लिया जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि उन कम्पनियों के संबंध में जहां उस परिसमापक याचिका को नोटिस की तामील के पश्चात् विचारणार्थ ग्रहण किया जा चुका है या अस्थायी रूप से परिसमापक नियुक्त किया जा चुका है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध ऐसी कम्पनियों के मामलों पर किसी भी समय बिन्दु पर लागू नहीं होंगे ।

72. यहां तक कि तारीख 29 जून, 2017 की अधिसूचना के अन्तर्गत भी उच्च न्यायालय में केवल वही याचिकाएं लम्बित हैं जिनमें नोटिस जारी नहीं हुई हैं और वे अन्तरित नहीं की जाती यदि उन कम्पनियों के विरुद्ध परिसमापन याचिका पहले ही फाइल न कर दी गई होती । किन्तु ऐसे मामलों में भी ऐसी किसी कम्पनी या कारपोरेट देनदारों के लेनदारों से दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन नई कार्यवाहियां फाइल किए जाने में कोई अभिव्यक्त या सारगर्भित वर्जन नहीं है । किसी भी स्थिति में ऐसे लेनदारों/ कारपोरेट देनदारों को उच्च न्यायालय की शरण में जाने से वर्जित किया जा सकता है और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के

अधीन राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण की शरण में जाने से नहीं ।

73. एकमात्र इस तथ्य के कारण कि परिसमापन कार्यवाहियों में नोटिस तामील हो जाने के पश्चात् उन पर 1956 के कम्पनी अधिनियम के उपबंधों के अनुसार विचार किया जाना है, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के उपबंध सामान्य कार्यवाहियों में और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन संस्थित विधिमान्य कार्यवाहियों में वर्जित नहीं हो जाते, या क्या इसका यह अर्थ है कि ऐसी कार्यवाहियां निलम्बित की जा सकती हैं ।

(VII) **कम्पनी न्यायालय को राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण, अहमदाबाद को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत कार्यवाही करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है :**

74. यह दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के निम्नलिखित उपबंधों के परिशीलन से स्पष्ट है :–

> 63. **सिविल न्यायालय को अधिकारिता का न होना** – किसी ऐसे विषय के संबंध में, जिस पर इस संहिता के अधीन राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण या राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण को अधिकारिता है, सिविल न्यायालय या प्राधिकरण को कोई वाद या कार्यवाहियां ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी ।
>
> 64. **आवेदनों का शीघ्र निपटारा** – 1. ....
>
> 2. इस संहिता द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण या राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण को प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई के संबंध में किसी न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकरण द्वारा कोई व्यादेश नहीं दिया जाएगा ।
>
> 231. **अधिकारिता का वर्जन** – किसी भी सिविल न्यायालय को, ऐसे किसी मामले के संबंध में अधिकारिता नहीं होगी जिसके संबंध में बोर्ड इस संहिता द्वारा या उसके अधीन कोई आदेश पारित करने के लिए सशक्त है और बोर्ड द्वारा इस संहिता के द्वारा या उसके अधीन पारित किसी आदेश के अनुसरण में की गई या किए जाने वाली किसी कार्रवाई के संबंध में किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकरण द्वारा कोई व्यादेश मंजूर नहीं किया जाएगा ।

75. दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन कार्यवाहियों के संबंध में कम्पनी न्यायालय की अधिकारिता इस संहिता की धारा 63 को दृष्टि में रखते हुए अभिव्यक्त रूप से वर्जित है । इसके अतिरिक्त, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) को दृष्टि में रखते हुए कम्पनी न्यायालय राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने से व्यादेशित करने से निषिद्ध है । दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 238, 1956 के कम्पनी अधिनियम के उपबंधों पर अध्यारोही प्रभाव रखती है । माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मामलों में दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) के समरुप उपबंधों पर विचार किया । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **घनश्यामशारदा** बनाम **शिव शंकर ट्रेंडिग कम्पनी** (उपरोक्त) वाले मामले में 1985 के रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम के अधीन सिविल न्यायालयों की अधिकारिता के वर्जन पर विचार किया,

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016	**रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम, 1985**
64. (2) इस संहिता द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण या राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण को प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई के संबंध में किसी न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकरण द्वारा कोई व्यादेश नहीं दिया जाएगा ।	26. इस अधिनियम के अधीन पारित कोई आदेश या किए गए प्रस्ताव, सिवाय इसमें उपबंधित के, नहीं अपीलीय होगा और किसी भी सिविल न्यायालय को किसी भी ऐसे मामले में जिसको विनिर्धारित करने के लिए अपीलीय प्राधिकारी या बोर्ड इस अधिनियम के द्वारा या इसके अधीन सशक्त है, अधिकारिता नहीं होगी और किसी न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा की गई किसी कार्यवाही के संबंध में इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के मतावलंवन में कोई व्यादेश प्रदान नहीं किया जाएगा ।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहां औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड की अधिकारिता का उचित रीति में

प्रयोग किया जाता है, रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम में समाविष्ट अधिकारिता का अभिव्यक्त रूप से वर्जन को दृष्टि में रखते हुए अस्थायी व्यादेश से संबंधित अनुतोष प्रदान करने के संबंध में भी सिविल न्यायालय की अधिकारिता पूर्णतया विवर्जित है । इस निर्णय के पैराग्राफ 29 से 31 इस प्रकार हैं :–

"29. .... यह अधिनियम एक स्वतः परिपूर्ण संहिता है और इस संहिता ने औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड को रुग्ण औद्योगिक कंपनियों के संबंध में ऐसा तंत्र अंगीकृत किए जाने के लिए पूर्ण रूप से पर्यवेक्षकीय नियंत्रण प्रदान कर दिया है जैसा कि उन रुग्ण कंपनियों का पता लगाने, उनको पुनर्जीवित किए जाने या उनका परिसमापन किए जाने के प्रयोजनार्थ अध्याय 3 में उपबंधित है । ऐसी रुग्ण कंपनी की विद्यमानता और उनकी रुग्णता की सीमा और उसको पुनर्जीवित किए जाने के लिए अंगीकृत किया गया तंत्र को विनिर्धारित किए जाने के लिए प्राधिकार औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के एकमात्र अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है और इस संबंध में धारा 26 को दृष्टि में रखते हुए सिविल न्यायालय की अधिकारिता को अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित कर दिया गया है ।

30. जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है, यह अधिनियम अपने आप में संपूर्ण संहिता है । यह अधिनियम किसी रुग्ण औद्योगिक कम्पनी के मामलों के संबंध में औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड को संदर्भ के रजिस्ट्रीकरण के प्रक्रम से सम्पूर्ण पर्यवेक्षणीय नियंत्रण प्रदान करता है और ऐसी कम्पनी की रुग्णता की स्थिति से संबंधित प्रश्न औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के एकमात्र अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत हैं । कम्पनी को सम्मिलित करते हुए किसी के भी द्वारा किया गया कोई भी निवेदन या प्रकथन कि कम्पनी ने कतिपय विकास द्वारा अपने आप को पुनर्जीवित कर लिया है और/या कम्पनी की हैसियत उसके रजिस्ट्रीकरण के प्रक्रम से सुदृढ़ हो गई है और इसलिए उसको पुनर्जीवित करने के लिए किसी भी योजना को आरम्भ किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, पर केवल औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड द्वारा विचार किया जाना चाहिए और किया जा सकता है । इस प्रकार का कोई भी प्रकथन या दावा औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष किया जाना चाहिए और औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के संतुष्ट होने के

पश्चात् ही यह निर्णय लिया जा सकता है कि कोई रुग्ण कम्पनी अब आगे के प्रयोजनार्थ रुग्ण है या नहीं, और ऐसी कम्पनी को इस अधिनियम के अधीन उसके पर्यवेक्षणीय नियंत्रण के अन्तर्गत होना नहीं माना जाएगा । इस प्रकार की कम्पनी के पुनर्जीवित होने के पहलू को पूर्णतया उसके (औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड), जो इस विवाद्यक को विनिर्धारित कर सकता है कि क्या ऐसी कोई कम्पनी पुनर्जीवित हो गई है या नहीं, के एकमात्र अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है । ऐसे मामलों के संबंध में सिविल न्यायालयों की अधिकारिता पूर्णतया विवर्जित हो जाती है ।

31. ऐसे मामलों, जहां अधिकारिता संबंधित तथ्य या तथ्यों की विद्यमानता, जिनके आधार पर कोई अधिकरण अपनी अधिकारिता का अवलंब ले सकता है या उसका प्रयोग कर सकता है, पर संदेह किया जाता है, उस आधार से भिन्न आधार पर आधारित है जहां आरम्भिक प्रक्रम पर अधिकारिता का अवलंब लिया जाना और उसका प्रयोग किया जाना विवादित नहीं होता, के विपरीत जिस बात को साबित करने का प्रयास किया गया है, यह है कि पश्चात्वर्ती या आकस्मिक परिस्थितियों के कारण संबद्ध अधिकरण की अधिकारिता समाप्त हो जाती है । वर्तमान मामले में, यह तथ्य कि कम्पनी रुग्ण कम्पनी के रूप में रजिस्ट्रीकृत थी, पर संदेह नहीं किया गया है और न ही यह दलील दी गई है कि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड ने गलत ढंग से आरम्भिक अधिकारिता को धारण कर लिया । किन्तु, जो दर्शाया गया है, यह है कि कम्पनी की हैसियत सकारात्मक होने के कारण अब औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड को इस कम्पनी पर अधिकारिता समाप्त हो गई है । हमारे विचार में औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड ने अधिकारिता को न्यायतः धारण किया और जब उस कम्पनी के समस्त वित्तीय मामले प्रत्यक्षतः औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के पर्यवेक्षणीय नियंत्रण के अधीन थे, तो इस बात को निर्णीत करने की शक्ति कि क्या उसकी अधिकारिता समाप्त हो चुकी है या नहीं, भी औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के अनन्य अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है । औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड अकेले ही इस बात का विनिर्धारण करने के लिए सशक्त है कि क्या कम्पनी की हैसियत सकारात्मक हो गई है जिसके परिणामस्वरूप उसकी अधिकारिता समाप्त हो गई है । सिविल न्यायालय को

सम्मिलित करते हुए अधिनियम के बाहर किसी के भी द्वारा कम्पनी की हैसियत के संबंध में इस प्रकार के विवाद्यक के संबंध में जांच अधिनियम के अभिव्यक्त आशय के विरुद्ध होगी और इससे अस्पष्ट और अनपेक्षित परिणाम निकलेंगे । वाद इस बाबत घोषणा की ईप्सा करते हुए विरचित किया गया है कि कम्पनी अब अधिनियम के अर्थान्तर्गत रुग्ण कम्पनी नहीं रह गई है, सक्षम और पोषणीय नहीं था । सिविल न्यायालय व्यादेश जारी करने में, जैसा कि उसने किया, सही और न्यायनुमत नहीं था । काउंसेल जिसने औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष तारीख 4 अप्रैल, 2013 को कम्पनी का प्रतिनिधित्व किया, ने ठीक निवेदन किया कि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड कम्पनी को मोचित किए जाने के पूर्व कम्पनी के अंकेशित तुलन-पत्र का परीक्षण कर सकता है और इस बाबत संतुष्ट हो सकता है कि क्या कम्पनी की हैसियत सकारात्मक में परिवर्तित हो चुकी है ।"

76. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मरडिया केमिकल्स लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में 2002 के प्रतिभूतिकरण और आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम (सरफेसी अधिनियम) की धारा 34 में समाविष्ट अधिकारिता के वर्जन पर विचार किया :–

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016	**सरफेसी अधिनियम, 2002**
64. (2) इस संहिता द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण या राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण को प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई के संबंध में किसी न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकरण द्वारा कोई व्यादेश नहीं दिया जाएगा ।	34. **सिविल न्यायालय की अधिकारिता का न होना** – किसी भी सिविल न्यायालय को, ऐसे मामले के संबंध में जिसमें ऋण वसूली अधिकरण या अपील अधिकरण को, इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अवधारण करने के लिए सशक्त किया गया है, कोई वाद या कार्यवाही ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी और इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन या बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 (1993 का 51) के अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या

	की जाने वाली किसी कार्रवाई की बाबत किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई व्यादेश अनुदत्त नहीं किया जाएगा ।

माननीय उच्चतम न्यायलय ने जो अभिनिर्धारित किया वह निम्नलिखित है :–

"50. यह निवेदन भी किया गया है कि ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष केवल उन उपायों के पश्चात् किसी अपील पर विचार किया जाता है, जो धारा 13 की उपधारा (4) में उपबंधित हैं और धारा 34 किसी ऐसे मामले के संबंध में विचार किए जाने को वर्जित करती है जिसको विनिर्धारित करने के लिए ऋण वसूली अधिकरण या ऋण वसूली अपीली अधिकरण सशक्त है । अतः प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित काउंसेल श्री साल्वे ने निवेदन किया कि धारा 13 की उपधारा (4) के अधीन किसी भी कार्यवाही के किए जाने या उपाय को अपनाए जाने के पूर्व सिविल न्यायालय की शरण में जाने में कोई वर्जन नहीं है । इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि ऋण लेने वालों को कोई अनुतोष उपलब्ध नहीं है । फिर भी, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि श्री साल्वे द्वारा दी गई यह दलील सही नहीं है । धारा 34 को सम्पूर्णता में पढ़े जाने पर यह दर्शित होता है कि सिविल न्यायालय की अधिकारिता ऐसे मामलों के संदर्भ में वर्जित है जिनमें ऋण वसूली अधिकरण या ऋण वसूली अपीली अधिकरण इस अधिनियम के अधीन प्रदत्त शक्तियों के मतालम्बन में कोई भी कार्यवाही करने के लिए या करने के संबंध में निर्णय लेने के लिए सशक्त है । यह कहा जा सकता है कि यह निषेद्ध किसी भी ऐसे मामले को आच्छादित करता है, जिसका संज्ञान ऋण वसूली अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है यद्यपि पहले इस दिशा में धारा 13 की उपधारा (4) के अधीन कोई भी उपाय अंगीकृत नहीं किया गया है । आगे यह उल्लेख किया जाता है कि किसी भी कार्यवाही, जिसको अधिकरण के समक्ष फाइल किया जा सकता है, के संबंध में अधिकारिता का वर्जन है । इसलिए, कोई भी मामला जिसके संबंध में कोई भी कार्यवाही बाद में भी की जा सकती है, सिविल न्यायालय को उसके संबंध में भी किसी कार्यवाही पर विचार करने की अधिकारिता नहीं होगी । अतः सिविल न्यायालय की अधिकारिता का वर्जन ऐसे सभी मामलों पर लागू होता है जिनका संज्ञान ऋण वसूली

अधिकरण द्वारा उन मामलों के अलावा लिया जा सकता है जिनमें धारा 13 की उपधारा (4) के अधीन अंगीकृत किए जा चुके हैं ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

(VIII) **व्यादेश देने की शक्ति का न होना :**

77. राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण उच्च न्यायालय का अधीनस्थ न्यायालय नहीं है और इसलिए, जैसा कि 1963 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41(ख) के उपबंधों द्वारा प्रतिषिद्ध किया गया है, उच्च न्यायालय द्वारा राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष किसी कारपोरेट देनदार के विरुद्ध किसी कार्यवाही के संस्थित किए जाने पर कोई व्यादेश पारित नहीं किया जा सकता ।

78. 1963 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41(ख) इस प्रकार है :–

"41. **व्यादेश कब नामंजूर किया जाता है** - व्यादेश अनुदत्त नहीं किया जा सकता –

(ख) किसी व्यक्ति को ऐसे न्यायालय में, जो उस न्यायालय के अधीनस्थ नहीं है जिससे व्यादेश ईप्सित है, किसी कार्यवाही को संस्थित या अभियोजित करने से अवरुद्ध करने को ।"

माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नाहर औद्योगिक इन्टरप्राइजेज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में जो अभिनिर्धारित किया है वह निम्नलिखित है :–

"92. हमने अभिनिर्धारित किया है कि अधिकरण न तो सिविल न्यायालय होते हैं और न ही उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय । उच्च न्यायालय की सामान्यतया संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन रिट अधिकारिता का प्रयोग किए जाने के प्रयोजनार्थ शरण ली जाती है ।"

79. इस माननीय न्यायालय द्वारा **रेन्टवर्क्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में इस बात पर विचार करते हुए कि क्या ऋण वसूली अधिकरण उच्च न्यायालय का अधीनस्थ न्यायालय है, पैराग्राफ 19 में जो अभिनिर्धारित किया वह निम्नलिखित है :–

"19. अतः यह स्पष्ट है कि ऋण वसूली अधिकरण इस

न्यायालय का अधीनस्थ न्यायालय नहीं है जबकि ऋण वसूली अधिकरण अपनी सामान्य मूल सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता है । यदि ऐसा है तो यह न्यायालय अपनी सामान्य मूल सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी वाद की सुनवाई करते हुए किसी भी बैंक को ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष किसी कार्यवाही को चलाने से व्यादेशित कर सकता है ।"

80. **काटन कारपोरेशन आफ इंडिया** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ 9 में जो अभिनिर्धारित किया वह निम्नलिखित है :–

"थोड़े से भिन्न दृष्टिकोण से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि हमारे देश में विधिक प्रणाली अन्याय के विरुद्ध अनुतोष के निस्तारण या अन्याय के विरुद्ध अनुतोष के निस्तारण से पक्षपातपूर्ण ढंग से इनकार के विरुद्ध इस प्रयोजन के लिए न्याय प्रदान किए जाने अर्थात् अतिक्रमण के विरुद्ध अनुतोष प्रदान किए जाने या विधितः संरक्षित हितों के अतिक्रमण के विरुद्ध अनुतोष प्रदान किए जाने, जिनको न्यायशास्त्र की दृष्टि से अधिकार कहा जाता है, के प्रयोजनार्थ सारभूत और प्रक्रियाजन्य, दोनों प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न न्यायालय की शरण में जाने और अनुतोष प्रदान किए जाने की परिकल्पना करती है । यदि किसी व्यक्ति को अपने अधिकारों के उल्लंघन या अतिक्रमण की शिकायत करते हुए विपक्षी जिसके विरुद्ध उसका दावा है और जिसको वह न्यायालय के माध्यम से प्रवर्तित करना चाहता है, द्वारा आरम्भ की गई किसी कार्यवाही द्वारा अनुतोष प्रदान किए जाने के लिए स्थापित न्यायालय की शरण में जाने से निषिद्धि किया जाता है, तो उसको सर्वप्रथम इस बात को साबित करते हुए उस कार्यवाही से अपनी प्रतिरक्षा करनी होगी कि उसका भी दावा है और उसको अनुतोष प्राप्त करने के लिए न्यायालय की शरण में जाने से निषिद्ध नहीं किया जा सकता । यदि किसी व्यक्ति को कोई विधिक अधिकार प्राप्त है और वह उसके अतिक्रमण या अतिलंघन की शिकायत करता है तो वह न्यायालय की शरण में जा सकता है और अनुतोष की ईप्सा कर सकता है । जब ऐसे किसी व्यक्ति को न्यायालय की शरण में जाने से निषिद्ध किया जाता है, तो उसको अपने अधिकार को साबित करना होता है और तत्पश्चात् व्यादेश का आदेश समाप्त कर दिया जाता है, उसको अनुतोष प्राप्त

करने के लिए न्यायालय की शरण में जाना होता है । अन्य शब्दों में, उसको एक बार पुनः मामले के सारे पहलूओं को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना होता है, जब व्यादेश के किसी दावे के विरुद्ध प्रतिरक्षा की जाती है, तो वह व्यक्ति जो दावे के विरुद्ध प्रतिरक्षा करता है तो वह व्यक्ति अपने दावे और उसको प्रवर्तित करने के अधिकार को प्रमाणित करता है । यदि वह सफल हो जाता है, तो उसको अनुतोष प्राप्त नहीं होता बल्कि न्यायालय का वह द्वार जो उसके लिए बन्द हो गया था, खुल जाता है । उसको गुणज कार्यवाहियों का सामना क्यों करना पड़े ? विधान-मंडल ने ऐसी स्थिति को निराकृत करने के प्रयोजनार्थ धारा 41(ख) को अधिनियमित किया और कानूनी रूप से उपबंधित किया कि कोई व्यादेश किसी व्यक्ति को किसी न्यायालय में, जो उस न्यायालय के अधीनस्थ नहीं है जिससे व्यादेश की ईप्सा की गई है, किसी कार्यवाही को संस्थित किए जाने या अभियोजित किए जाने से निषिद्ध किए जाने के लिए प्रदान नहीं किया जा सकता । .... किसी भी स्थिति में न्यायालय को कानूनी उपबंध द्वारा किसी व्यक्ति को किसी समकक्ष अधिकारिता वाले न्यायालय या वरिष्ठ अधिकारिता वाले न्यायालय में कोई कार्यवाही संस्थित करने या अभियोजित करने से निषिद्ध करने के लिए व्यादेश प्रदान करने से विवर्जित किया जाता है ।........."

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

81. यहां पर यह उल्लेख भी किया जाता है कि याची 1956 के कम्पनी अधिनियम में कोई उपबंध न होने के कारण राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन व्यादेश की कार्यवाही संस्थित किए जाने के प्रयोजनार्थ आक्षेपित आदेश के समर्थन में उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का आश्रय नहीं ले सकता । इस दलील को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **काटन कारपोरेशन आफ इंडिया** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त रूप से अस्वीकृत किया जा चुका है और पैराग्राफ 21 में यह अभिनिर्धारित किया जाता है :–

"बहुसंख्यक न्यायाधीशों द्वारा दिए गए विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि समुचित मामलों में न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 द्वारा आच्छादित न होने वाले मामलों में

स्थायी व्यादेश प्रदान कर सकता है । किन्तु न्यायालय को इस अन्तर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उस कानूनी उपबंध का अनदेखा नहीं करना चाहिए जो स्पष्टतः उपदर्शित करता है कि कार्यवाही को आरम्भ किए जाने से निषिद्ध किए जाने के लिए व्यादेश प्रदान नहीं किया जा सकता । धारा 41(ख) ऐसा ही उपबंध हैं । और यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का अवलंब किसी कानूनी उपबंध को अकृत या निरर्थक किए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं लिया जा सकता ।......."

82. इसके अतिरिक्त, दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) में एक अभिव्यक्त वर्जन समाविष्ट है जो किसी भी न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकरण को दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण को प्रदत्त किसी शक्ति के मतावलंबन में किसी भी कार्यवाही या की जाने वाली कार्यवाही के संबंध में कोई व्यादेश प्रदान करने से निषिद्ध करता है ।

83. यदि याची की दलीलों को स्वीकार कर लिया जाता तो इसका यह अर्थ होता कि 1956 के कम्पनी अधिनियम के अधीन परिसमापन याचिका को सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने (या परिसमापन आदेश पारित किए जाने) और तत्पश्चात् औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष संदर्भ प्रस्तुत हो जाने के पश्चात् भी रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22 लागू नहीं होगी और उच्च न्यायालय को परिसमापन याचिका पर कार्यवाही करने की शक्ति न होने के बाद भी औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष कार्यवाही को व्यादेश द्वारा रोकने की शक्ति प्राप्त होगी । उच्चतम न्यायालय ने **रियल वैल्यू एप्लाएन्सेस लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में इस विवाद्यक पर विचार करते हुए कि क्या उच्च न्यायालय को 1956 के कम्पनी अधिनियम के अधीन शक्ति प्राप्त थी, अर्थात् वही उपबंध जिनका अवलंब याची यह दलील देने के प्रयोजनार्थ वर्तमान में ले रहा है कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अधीन कार्यवाही को व्यादेशित किया जा सकता है, यह अभिनिर्धारित किया :—

"क्या, जब एक बार औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड ने तारीख 24 जुलाई, 1997 को तारीख 17 जुलाई, 1997 के संदर्भ को अधिनियम की धारा 15 सपठित विनियम रजिस्ट्रीकृत कर दिया,

तो उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 20 दिसम्बर, 1996 के स्थगन आदेश को समाप्त करते हुए और कम्पनी की ओर से अस्थायी परिसमापक की नियुक्ति की पुष्टि करते हुए तारीख 8 अगस्त, 1997 को आदेश पारित करना अनुज्ञेय था और क्या उच्च न्यायालय की किसी अन्य खंडपीठ के लिए अधिनियम की धारा 22 को दृष्टि में रखते हुए वाद से उद्‌भूत कार्यवाहियों में तारीख 28 जुलाई, 1997 को रिसीवर की नियुक्ति करना अनुज्ञेय था ?

....

उच्च न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 16(1) में शब्द 'हो सकता है' के प्रयोग का अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई है कि उस धारा में शब्द 'हो सकता है' दर्शित करता है कि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड को किसी संदर्भ को सरसरी तौर पर और गुणागुण पर विचार किए बिना अस्वीकृत करने की शक्ति प्राप्त है और यह केवल तब होता है जब औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड धारा 16(1) के अधीन संदर्भ पर गुणागुण पर विचार करता है और तब यह कहा जाता है कि इस धारा द्वारा अनुध्यात 'जांच' आरम्भ हो चुकी है । यह दलील दी गई कि यदि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष लम्बित संदर्भ धारा 15 के अधीन केवल रजिस्ट्रीकरण के प्रक्रम पर है, तो धारा 22 के उपबंध प्रभावी नहीं होंगे । हमारे विचार में इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है । हमारे विचार में जब धारा 16(1) यह कहती है कि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के अन्तर्गत जांच 'ऐसे तरीके में जैसा कि वह उचित समझे' की जा सकती है, उक्त शब्दों का आशय केवल इस संदेश को संप्रेक्षित करना है कि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड में उस प्रक्रिया के संबंध में, जिसका अनुसरण वह धारा 16(1) के अधीन किसी जांच को संचालित करने के प्रयोजनार्थ कर सकता है, व्यापक विवेकाधिकार निहित है, और इससे अधिक कुछ नहीं । वास्तव में, यदि एक बार संदर्भ संवीक्षा के पश्चात् रजिस्ट्रीकृत हो जाता है तो हमारे विचार में औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के लिए यह आज्ञापक है कि वह जांच संचालित करे । यदि विनियम में विहित संदर्भ के प्ररूप को देखा जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इसमें कम्पनी की आस्तियों, दायित्वों इत्यादि के व्यापक वित्तीय विवरणों के संबंध में 50 से अधिक कालम समाविष्ट हैं । वास्तव में,

व्यवहारिक रूप से औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के लिए सूचना/दस्तावेजों को मंगाए बिना या कम्पनी या पक्षों को सुने बिना किसी संदर्भ को तत्कालीक रूप से अस्वीकृत करना असंभव हो जाएगा । इसके अलावा, यह अधिनियम रुग्ण उद्योगों को, इसके पहले कि उनका 1956 के कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत परिसमापन हो जाए, पुनर्जीवित और पुनर्स्थापित करने के लिए आशयित है । क्या कम्पनी इस बाबत घोषणा की ईप्सा करती है कि यह एक रुग्ण कम्पनी है या कोई अन्य निकाय इस बाबत घोषणा की ईप्सा करता है कि यह एक रुग्ण कम्पनी है, हमारे विचार में यह आवश्यक है कि अधिनियम के अन्तर्गत कोई भी अंतिम विनिश्चय लिए जाने के पूर्व कम्पनी को सुना जाए । विधायी आशय यह भी है कि औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड द्वारा विनिश्चय लिए जाने के पूर्व फाइल में उल्लिखित आस्तियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही आरम्भ न की जाए चूंकि यदि कम्पनी की आस्तियों को बेच दिया गया या कम्पनी का परिसमापन कर दिया गया, तो बाद में यथास्थिति को पुनर्स्थापित करना कठिन हो जाएगा । इसलिए, हमारे विचार में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने औद्योगिक वित्त निगम **बनाम** महाराष्ट्र स्टील लिमिटेड ए. आई. आर. 1988 इलाहाबाद 70 वाले मामले में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय स्पोन्ज आयरन इंडिया लिमिटेड बनाम नीलिमा स्टील लिमिटेड वाले मामले में, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने उड़ीसा स्पोन्ज आयरन लिमिटेड **बनाम** रिषभ इस्पात लिमिटेड (1993) 78 कम्पनी केसेज 264 वाले मामले में इस प्रकार की दलील को अस्वीकृत करके और यह अभिनिर्धारित करके जांच के बारे में यह धारणा की जानी चाहिए वह तभी आरम्भ हो गई थीं जब संदर्भ का रजिस्ट्रीकरण संवीक्षा के पश्चात् पूर्ण हो गया और समय-समय पर कम्पनी की आस्तियों के विरुद्ध कार्यवाही औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड द्वारा अंतिम विनिश्चय लिए जाने तक धारा 22 में अधिकथित उपबंधों के अनुसार स्थगित रहनी चाहिए, न्यायतः कार्य किया है ।

....

अतः, यह अभिनिर्धारित किए जाने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती कि तारीख 24 मार्च, 1994 से विनियम 19 के संशोधन के पश्चात् जब एक बार संदर्भ रजिस्ट्रीकृत हो जाता है और जब उसी

समय यह आज्ञापक हो जाता है कि इत्तिलाकर्ता द्वारा सूचना/दस्तावेज फाइल किए जाने की ईप्सा की जाए और इस प्रकार का निर्देश दिया जाता है, तो धारा 22 के प्रयोजनार्थ धारा 16(1) के अधीन जांच के बाबत यह धारणा की जानी चाहिए कि वह आरम्भ हो गई है । धारा 22 और उसमें समाविष्ट प्रतिषेध तुरन्त ही प्रभावी हो जाएंगे ।

....

32. पूर्वोक्त कारणोंवश खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 28 जुलाई, 1997 को पारित आदेश जिसके द्वारा रिसीवर की नियुक्ति की गई और उच्च न्यायालय की एक अन्य न्यायपीठ द्वारा तारीख 8 अगस्त, 1997 को पारित आदेश जिसके द्वारा अस्थायी परिसमापक की नियुक्ति को पुनः प्रभावी किया गया, अपास्त किए जाते हैं । तद्नुसार, सिविल अपीलें मंजूर की जाती हैं । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता । यदि आवश्यक हुआ तो प्रत्यर्थी इस संबंध में औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड द्वारा पहले से पारित आदेशों के अतिरिक्त आगे के आदेशों, यदि कोई हों, के लिए अधिनियम की धारा 22 और धारा 22(क) के अधीन औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड की शरण में जाने के लिए स्वतंत्र हैं ।"

84. **मैसर्स रिषभ एग्रो इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि परिसमापन आदेश पारित किए जाने के बाद भी रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22 के उपबंध लागू होंगे और 1956 के कम्पनी अधिनियम के अधीन न्यायालय को रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22 को दृष्टि में रखते हुए औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों को व्यादेश द्वारा रोकने की कोई शक्ति नहीं होगी :–

"यह सत्य है कि धारा 22 के उपयोजन का अवलंब लेने के लिए यह साबित किया जाना होगा कि धारा 16 के अधीन कोई जांच लम्बित है या धारा 17 के अधीन निर्दिष्ट कोई योजना तैयार की जा रही है या स्वीकृत योजना क्रियान्वयन के अन्तर्गत है या किसी औद्योगिक कम्पनी के विरुद्ध धारा 25 के अधीन कोई अपील लम्बित है । किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि पूर्वोक्त अत्यावश्यकताओं में से किसी के भी विद्यमान रहने के बाद भी धारा 22 के उपबंध कम्पनी के परिसमापन का आदेश पारित होने के पश्चात् लागू नहीं होंगे ।

शब्द 'औद्योगिक कम्पनी के परिसमापन के लिए कोई कार्यवाही या विपदग्रस्त निष्पादन या औद्योगिक कम्पनी की किसी भी संपत्ति का इसी प्रकार से निस्तारण या उसके संबंध में रिसीवर की नियुक्ति हो सकती है या उसके बाबत आगे कार्यवाही की जा सकती है', हमारे मस्तिष्क में इस बाबत कोई संदेह नहीं छोड़ते कि इस धारा का प्रभाव परिसमापन आदेश पारित होने के बाद भी लागू होगा चूंकि इसके बाद कम्पनी अधिनियम के अधीन कोई कार्यवाही नहीं चल सकती । ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त शब्दों अर्थात् उसके बाबत आगे कार्यवाही की जा सकती है, का संज्ञान नहीं लिया । चूंकि आक्षेपित आदेश विधि की गलत उपधारणा पर आधारित है और ऊपर वर्णित महत्वपूर्ण शब्दों की पूर्णतया अनदेखा करते हुए पारित किया गया है, उसको मान्य नहीं ठहराया जा सकता ।"

85. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए चूंकि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम का उत्तराधिकारी कानून है और दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 64(2) रुग्ण औद्योगिक कम्पनी अधिनियम की धारा 22 पर आधारित होने के कारण यह दलील कि कम्पनी न्यायालय परिसमापन याचिकाओं के लम्बन की दशा में राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष लम्बित कार्यवाहियों को व्यादेश द्वारा निषिद्ध करने की शक्ति रखता है, पूर्णतया गलत है और विधायी आशय के विपरीत है ।

(IX) कम्पनी न्यायालय को पूर्ववर्ती आदेश को वापस लेने की अधिकारिता प्राप्त है :

86. 1959 कम्पनी (न्यायालय) नियम के अनुसार 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध 1956 के कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत चलने वाली कार्यवाहियों पर लागू होंगे, जब तक कि इस प्रकार से फाइल किया गया आवेदन उक्त नियम के अभिव्यक्त उपबंधों के विपरीत न हों । 1959 कम्पनी (न्यायालय) नियम का नियम 9 उपबंधित करता है कि कम्पनी न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 सिविल अधिकारिता के किसी भी न्यायालय में लम्बित समस्त कार्यवाहियों पर इसको लागू करती है । संयुक्त रूप से पढ़े जाने पर यह दर्शित होगा कि कम्पनी न्यायालय को उसके द्वारा पूर्व में पारित किए गए किसी भी आदेश को वापस लेने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त है **डा. राइट्स फूड प्रोडक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड**

(उपरोक्त) वाला मामला ।

(X) किसी भी आदेश को वापस लिया जा सकता है यदि वह बिना अधिकारिता के पारित किया गया हो :–

87. माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी आदेश को किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा वापस लिया जा सकता है यदि उस आदेश को पारित करने में अन्तर्निहित रूप से अधिकारिता की चूक हुई है **बूधिया स्वेन और अन्य** बनाम **गोपीनाथ देब और अन्य** (उपरोक्त) ।

88. इन परिस्थितियों में, अहमदाबाद के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण पर दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए आवेदन पर विचार करने में कोई वर्जन नहीं है । अतः यह आवेदन सफल होता है । तारीख 19 जुलाई, 2017 को पारित आक्षेपित आदेश वापस लिया जाता/समाप्त किया जाता है ।

कम्पनी आवेदन का तद्नुसार निस्तारण किया गया ।

कम्पनी आवेदन का निपटारा किया गया ।

अवि.

गतांक से आगे.........

अध्याय 5

मामलों की रिपोर्ट करने के लिए प्रक्रिया

19. अपराधों की रिपोर्ट करना – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति (जिसके अंतर्गत बालक भी है) जिसको यह आशंका है कि इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किए जाने की संभावना है या यह जानकारी रखता है कि ऐसा कोई अपराध किया गया है, वह निम्नलिखित को ऐसी जानकारी उपलब्ध कराएगा :–

(क) विशेष किशोर पुलिस यूनिट ; या

(ख) स्थानीय पुलिस ।

(2) उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रत्येक रिपोर्ट में –

(क) एक प्रविष्टि संख्या अंकित होगी और लेखबद्ध की जाएगी ;

(ख) सूचना देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी ;

(ग) पुलिस यूनिट द्वारा रखी जाने वाली पुस्तिका में प्रविष्ट की जाएगी ।

(3) जहां उपधारा (1) के अधीन रिपोर्ट बालक द्वारा दी गई है, उसे उपधारा (2) के अधीन सरल भाषा में अभिलिखित किया जाएगा जिससे बालक अभिलिखित की जा रही अंतर्वस्तुओं को समझ सके ।

(4) यदि बालक द्वारा नहीं समझी जाने वाली भाषा में अंतर्वस्तु अभिलिखित की जा रही है या बालक यदि वह उसको समझने में असफल रहता है तो कोई अनुवादक या कोई दुभाषिया जो ऐसी अर्हताएं, अनुभव रखता हो और ऐसी फीस के संदाय पर जो विहित की जाए, जब कभी आवश्यक समझा जाए, उपलब्ध कराया जाएगा ।

(5) जहां विशेष किशोर पुलिस यूनिट या स्थानीय पुलिस का यह समाधान हो जाता है कि उस बालक को, जिसके विरुद्ध कोई अपराध किया गया है, देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता है तब रिपोर्ट के चौबीस घंटे के भीतर कारणों को लेखबद्ध करने के पश्चात् उसको यथाविहित ऐसी देखरेख और संरक्षण में (जिसके अंतर्गत बालक को संरक्षण गृह या निकटतम अस्पताल में भर्ती किया जाना भी है) रखने की

तुरंत व्यवस्था करेगी ।

(6) विशेष किशोर पुलिस यूनिट या स्थानीय पुलिस अनावश्यक विलंब के बिना किन्तु चौबीस घंटे की अवधि के भीतर मामले को बालक कल्याण समिति और विशेष न्यायालय या जहां कोई विशेष न्यायालय पदाभिहित नहीं किया गया है वहां सेशन न्यायालय को रिपोर्ट करेगी, जिसके अंतर्गत बालक की देखभाल और संरक्षण के लिए आवश्यकता और इस संबंध में किए गए उपाय भी हैं ।

(7) उपधारा (1) के प्रयोजन के लिए सद्भावपूर्वक दी गई जानकारी के लिए किसी व्यक्ति द्वारा सिविल या दांडिक कोई दायित्व उपगत नहीं होगा ।

20. मामले को रिपोर्ट करने के लिए मीडिया, स्टूडियो और फोटो चित्रण सुविधाओं की बाध्यता – मीडिया या होटल या लॉज या अस्पताल या क्लब या स्टूडियो या फोटो चित्रण संबंधी सुविधाओं का कोई कार्मिक, चाहे जिस नाम से ज्ञात हो, उनमें नियोजित व्यक्तियों की संख्या को दृष्टि में लाए बिना किसी ऐसी सामग्री या वस्तु की किसी माध्यम से, जो किसी बालक के लैंगिक शोषण संबंधी है, (जिसके अंतर्गत अश्लील साहित्य, लिंग संबंधी या बालक या बालकों का अश्लील प्रदर्शन करना भी है), यथास्थिति, विशेष किशोर पुलिस यूनिट या स्थानीय पुलिस को ऐसी जानकारी उपलब्ध कराएगा ।

21. मामले की रिपोर्ट करने या अभिलिखित करने में विफल रहने के लिए दंड – (1) कोई व्यक्ति जो धारा 19 की उपधारा (1) या धारा 20 के अधीन किसी अपराध के किए जाने की रिपोर्ट करने में विफल रहेगा या जो धारा 19 की उपधारा (2) के अधीन ऐसे अपराध को अभिलिखित करने में विफल रहेगा, वह किसी भी भांति के कारावास से, जो छह मास तक का हो सकेगा या जुर्माने से या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।

(2) किसी कंपनी या किसी संस्था (चाहे जिस नाम से ज्ञात हो) का भारसाधक कोई व्यक्ति जो अपने नियंत्रणाधीन किसी अधीनस्थ के संबंध में धारा 19 की उपधारा (1) के अधीन किसी अपराध के किए जाने की रिपोर्ट करने में विफल रहेगा, वह ऐसी अवधि के कारावास से जो एक वर्ष तक का हो सकेगा और जुर्माने से दंडित किया जाएगा ।

(3) उपधारा (1) के उपबंध इस अधिनियम के अधीन किसी बालक को लागू नहीं होंगे ।

22. मिथ्या परिवाद या मिथ्या सूचना के लिए दंड – (1) कोई व्यक्ति जो धारा 3, धारा 5, धारा 7 और धारा 9 के अधीन किए गए किसी अपराध के संबंध में किसी व्यक्ति के विरुद्ध उसको अपमानित करने, उद्यापित करने या धमकाने या उसकी मानहानि करने के एकमात्र आशय से मिथ्या परिवाद करेगा या मिथ्या सूचना उपलब्ध कराएगा, वह ऐसे कारावास से, जो छह मास तक का हो सकेगा या जुर्माने से या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।

(2) जहां किसी बालक द्वारा कोई मिथ्या परिवाद किया गया है या मिथ्या सूचना उपलब्ध कराई गई है, वहां ऐसे बालक पर कोई दंड अधिरोपित नहीं किया जाएगा ।

(3) जो कोई, बालक नहीं होते हुए, किसी बालक के विरुद्ध कोई मिथ्या परिवाद करेगा या मिथ्या सूचना उसको मिथ्या जानते हुए उपलब्ध कराएगा जिसके द्वारा ऐसा बालक इस अधिनियम के अधीन किन्हीं अपराधों के लिए उत्पीड़ित हो, वह ऐसे कारावास से, जो एक वर्ष तक का हो सकेगा या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जाएगा ।

23. मीडिया के लिए प्रक्रिया – (1) कोई व्यक्ति, किसी भी प्रकार के मीडिया या स्टूडियो या फोटो चित्रण संबंधी सुविधाओं से, कोई पूर्ण या अधिप्रमाणित सूचना रखे बिना, किसी बालक के संबंध में कोई ऐसी रिपोर्ट नहीं करेगा या उस पर कोई ऐसी टीका-टिप्पणी नहीं करेगा जिससे उसकी ख्याति का हनन या उसकी निजता का अतिलंघन होना प्रभावित होता हो ।

(2) किसी मीडिया में कोई रिपोर्ट, बालक की पहचान को, जिसके अंतर्गत उसका नाम, पता, फोटोचित्र, परिवार के ब्यौरे, विद्यालय, पड़ोस या कोई ऐसी अन्य विशिष्टियां भी हैं, जिनसे बालक की पहचान का प्रकटन होता हो, प्रकट नहीं करेगी :

परंतु ऐसे कारणों से जो अभिलिखित किए जाएंगे, अधिनियम के अधीन मामले का विचारण करने के लिए सक्षम विशेष न्यायालय ऐसे प्रकटन के लिए अनुज्ञात कर सकेगा यदि उसकी राय में ऐसा प्रकटन, बालक के हित में है ।

(3) मीडिया या स्टूडियो या फोटो चित्रण संबंधी सुविधाओं का कोई प्रकाशक या स्वामी, संयुक्त रूप से और पृथक् रूप से अपने कर्मचारी के कार्यों और लोपों के लिए दायित्वाधीन होगा ।

(4) कोई व्यक्ति जो उपधारा (1) या उपधारा (2) के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किंतु जो एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से, दंडित किए जाने के लिए दायी होगा ।

अध्याय 6

बालक के कथनों को अभिलिखित करने के लिए प्रक्रिया

24. बालक के कथन को अभिलिखित किया जाना – (1) बालक के कथन को, बालक के निवास पर या ऐसे स्थान पर जहां वह साधारणतया निवास करता है या उसकी पसंद के स्थान पर और यथासाध्य, उप-निरीक्षक की पंक्ति से अन्यून किसी महिला पुलिस अधिकारी द्वारा अभिलिखित किया जाएगा ।

(2) बालक के कथन को अभिलिखित किए जाते समय पुलिस अधिकारी वर्दी में नहीं होगा ।

(3) अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी, बालक की परीक्षा करते समय यह सुनिश्चित करेगा कि बालक किसी भी समय पर अभियुक्त के किसी भी प्रकार से संपर्क में न आए ।

(4) किसी बालक को किसी भी कारण से रात्रि में किसी पुलिस स्टेशन में निरुद्ध नहीं किया जाएगा ।

(5) पुलिस अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि बालक की पहचान पब्लिक मीडिया से तब तक संरक्षित की है जब तक कि बालक के हित में विशेष न्यायालय द्वारा अन्यथा निदेशित न किया गया हो ।

25. मजिस्ट्रेट द्वारा बालक के कथन का अभिलेखन – (1) यदि बालक का कथन, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संहिता कहा गया है) की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किया जाता है तो उसमें अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसे कथन को अभिलिखित करने वाला मजिस्ट्रेट, बालक द्वारा बोले गए अनुसार कथन को अभिलिखित करेगा :

परंतु संहिता की धारा 164 की उपधारा (1) के प्रथम परंतुक में अंतर्विष्ट उपबंध, जहां तक वह अभियुक्त के अधिवक्ता की उपस्थिति अनुज्ञात करता है, इस मामले में लागू नहीं होगा ।

(2) मजिस्ट्रेट, उस संहिता की धारा 173 के अधीन पुलिस द्वारा

अंतिम रिपोर्ट फाइल किए जाने पर, बालक और उसके माता-पिता या उसके प्रतिनिधि को संहिता की धारा 207 के अधीन विनिर्दिष्ट दस्तावेज की एक प्रति, प्रदान करेगा ।

26. अभिलिखित किए जाने वाले कथन के संबंध में अतिरिक्त उपबंध – (1) यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी, बालक के माता-पिता या ऐसे किसी अन्य व्यक्ति की, जिसमें बालक का भरोसा या विश्वास है, उपस्थिति में बालक द्वारा बोले गए अनुसार कथन अभिलिखित करेगा ।

(2) जहां आवश्यक है, वहां, यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी, बालक का कथन अभिलिखित करते समय किसी अनुवादक या किसी दुभाषिए की, जो ऐसी अर्हताएं, अनुभव रखता हो और ऐसी फीस के संदाय पर जो विहित की जाए, सहायता ले सकेगा ।

(3) यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी किसी बालक का कथन अभिलिखित करने के लिए मानसिक या शारीरिक निःशक्तता वाले बालक के मामले में किसी विशेष शिक्षक या बालक से संपर्क की रीति से सुपरिचित किसी व्यक्ति या उस क्षेत्र में किसी विशेषज्ञ की, जो ऐसी अर्हताएं, अनुभव रखता हो और ऐसी फीस के संदाय पर जो विहित की जाए, की सहायता ले सकेगा ।

(4) जहां संभव है, वहां, यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि बालक का कथन श्रव्य-दृश्य इलेक्ट्रानिक माध्यमों से भी अभिलिखित किया जाए ।

27. बालक की चिकित्सीय परीक्षा – (1) उस बालक की चिकित्सीय परीक्षा, जिसके संबंध में इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किया गया है, इस बात के होते हुए भी कि इस अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 164क के अनुसार की जाएगी ।

(2) यदि पीड़ित कोई बालिका है तो चिकित्सीय परीक्षा किसी महिला डॉक्टर द्वारा की जाएगी ।

(3) चिकित्सीय परीक्षा बालक के माता-पिता या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में की जाएगी जिसमें बालक भरोसा या विश्वास रखता हो ।

(4) जहां उपधारा (3) में निर्दिष्ट बालक के माता-पिता या अन्य व्यक्ति, बालक की चिकित्सीय परीक्षा के दौरान किसी कारण से उपस्थित नहीं हो सकता है तो चिकित्सीय परीक्षा, चिकित्सा संस्था के प्रमुख द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी महिला की उपस्थिति में की जाएगी ।

अध्याय 7

विशेष न्यायालय

28. विशेष न्यायालयों को अभिहित किया जाना – (1) त्वरित विचारण उपलब्ध कराने के प्रयोजनों के लिए राज्य सरकार उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, प्रत्येक जिला के लिए इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए किसी सेशन न्यायालय को एक विशेष न्यायालय होने के लिए, अभिहित करेगी :

परंतु यदि किसी सेशन न्यायालय को, बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 (2006 का 4) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन उन्हीं प्रयोजनों के लिए अभिहित किसी विशेष न्यायालय को, बालक न्यायालय के रूप में अधिसूचित कर दिया है, तो ऐसा न्यायालय इस धारा के अधीन विशेष न्यायालय समझा जाएगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण करते समय कोई विशेष न्यायालय किसी ऐसे अपराध का [उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी अपराध से भिन्न] विचारण भी करेगा जिसके साथ अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन उसी विचारण में आरोपित किया जा सकेगा ।

(3) इस अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालय को, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का 21) में किसी बात के होते हुए भी, उस अधिनियम की धारा 67ख के अधीन अपराधों का, जहां तक वे किसी कृत्य या व्यवहार या रीति में बालकों को चित्रित करने वाली लैंगिक प्रकटन सामग्री के प्रकाशन या पारेषण से संबंधित है, या बालकों का आन-लाइन दुरुपयोग सुकर बनाते हैं, विचारण करने की अधिकारिता होगी ।

29. कतिपय अपराधों के बारे में उपधारणा – जहां किसी व्यक्ति को इस अधिनियम की धारा 3, धारा 5, धारा 7 और धारा 9 के अधीन किसी अपराध को करने या दुष्प्रेरण करने या उसको करने का प्रयत्न करने के लिए अभियोजित किया गया है वहां विशेष न्यायालय तब तक यह

उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने, यथास्थिति, वह अपराध किया है, दुष्प्रेरण किया है या उसको करने का प्रयत्न किया है जब तक कि इसके विरुद्ध साबित नहीं कर दिया जाता है ।

30. आपराधिक मानसिक दशा की उपधारणा – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए किसी अभियोजन में, जो अभियुक्त की ओर से आपराधिक मानसिक स्थिति की अपेक्षा करता है, विशेष न्यायालय ऐसी मानसिक दशा की विद्यमानता की उपधारणा करेगा, किन्तु अभियुक्त के लिए यह तथ्य साबित करने के लिए प्रतिरक्षा होगी कि उस अभियोजन में किसी अपराध के रूप में आरोपित कृत्य के संबंध में उसकी ऐसी मानसिक दशा नहीं थी ।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी तथ्य का साबित किया जाना केवल तभी कहा जाएगा जब विशेष न्यायालय उसके युक्तियुक्त संदेह से परे विद्यमान होने पर विश्वास करता है और केवल तब नहीं जब इसकी विद्यमानता संभाव्यता की प्रबलता द्वारा स्थापित होती है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "आपराधिक मानसिक दशा" के अंतर्गत आशय, हेतुक, किसी तथ्य का ज्ञान और किसी तथ्य में विश्वास या विश्वास किए जाने का कारण भी है ।

31. विशेष न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) का लागू होना – इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबंध (जमानत और बंधपत्र विषयक उपबंधों सहित) किसी विशेष न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू होंगे और उक्त उपबंधों के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायालय को सेशन न्यायालय समझा जाएगा तथा विशेष न्यायालय के समक्ष अभियोजन का संचालन करने वाले व्यक्ति को, लोक अभियोजक समझा जाएगा ।

32. विशेष लोक अभियोजक – (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, केवल इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन मामलों का संचालन करने के लिए प्रत्येक विशेष न्यायालय के लिए एक विशेष लोक अभियोजक की, नियुक्ति करेगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए कोई व्यक्ति केवल तभी पात्र होगा यदि उसने सात वर्ष से अन्यून अवधि के लिए अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय किया हो ।

(3) इस धारा के अधीन विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 2 के खंड (प) के अर्थांतर्गत एक लोक अभियोजक समझा जाएगा और उस संहिता के उपबंध तद्नुसार प्रभावी होंगे ।

अध्याय 8

विशेष न्यायालयों की प्रक्रिया और शक्तियां तथा साक्ष्य का अभिलेखन

33. विशेष न्यायालयों की प्रक्रिया और शक्तियां – (1) कोई विशेष न्यायालय, अभियुक्त को विचारण के लिए उसको सुपुर्द किए बिना किसी अपराध का संज्ञान ऐसे अपराध का गठन करने वाले तथ्यों का परिवाद प्राप्त होने पर या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर, ले सकेगा ।

(2) यथास्थिति, विशेष लोक अभियोजक या अभियुक्त के लिए उपसंजात होने वाला काउंसेल बालक की मुख्य परीक्षा, प्रतिपरीक्षा, या पुनःपरीक्षा अभिलिखित करते समय बालक से पूछे जाने वाले प्रश्नों को, विशेष न्यायालय को संसूचित करेगा जो क्रम से उन प्रश्नों को बालक के समक्ष रखेगा ।

(3) विशेष न्यायालय, यदि वह आवश्यक समझे, विचारण के दौरान बालक के लिए बार-बार विराम अनुज्ञात कर सकेगा ।

(4) विशेष न्यायालय, बालक के परिवार के किसी सदस्य, संरक्षक, मित्र या नातेदार की, जिसमें बालक का भरोसा और विश्वास है, न्यायालय में उपस्थिति अनुज्ञात करके बालक के लिए मित्रतापूर्ण वातावरण सृजित करेगा ।

(5) विशेष न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि बालक को न्यायालय में साक्ष्य देने के लिए बार-बार नहीं बुलाया जाए ।

(6) विशेष न्यायालय, विचारण के दौरान आक्रामक या बालक के चरित्र हनन संबंधी प्रश्न पूछने के लिए अनुज्ञात नहीं करेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि सभी समय बालक की गरिमा बनाए रखी जाए ।

(7) विशेष न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि अन्वेषण या विचारण के दौरान किसी भी समय बालक की पहचान प्रकट नहीं की जाए :

परंतु ऐसे कारणों से जो अभिलिखित किए जाएं, विशेष न्यायालय

ऐसे प्रकटन की अनुज्ञा दे सकेगा, यदि उसकी राय में ऐसा प्रकटन बालक के हित में है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, बालक की पहचान में, बालक के कुटुंब, विद्यालय, नातेदार, पड़ोसी की पहचान या कोई अन्य सूचना जिसके द्वारा बालक की पहचान का पता चल सके सम्मिलित होंगे ।

(8) समुचित मामलों में विशेष न्यायालय, दंड के अतिरिक्त, बालक को कारित किसी शारीरिक या मानसिक आघात के लिए या ऐसे बालक के तुरंत पुनर्वास के लिए उसको ऐसे प्रतिकर के संदाय का निदेश दे सकेगा, जो विहित किया जाए ।

(9) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए विशेष न्यायालय को इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के विचारण के प्रयोजन के लिए सेशन न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी और ऐसे अपराध का विचारण ऐसे करेगा, मानो वह सेशन न्यायालय हो, और यथाशक्य सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करेगा ।

34. बालक द्वारा अपराध किए जाने और विशेष न्यायालय द्वारा आयु का अवधारण करने के मामले में प्रक्रिया – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी बालक द्वारा किया जाता है वहां ऐसे बालक पर किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का 56) के उपबंधों के अधीन कार्रवाई की जाएगी ।

(2) यदि विशेष न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही में इस संबंध में कोई प्रश्न उठता है कि कोई व्यक्ति बालक है या नहीं तो ऐसे प्रश्न का अवधारण विशेष न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्ति की आयु के बारे में स्वयं का समाधान करने के पश्चात् किया जाएगा और वह ऐसे अवधारण के लिए उसके कारणों को लेखबद्ध करेगा ।

(3) विशेष न्यायालय द्वारा किया गया कोई आदेश केवल पश्चात्वर्ती सबूत के कारण अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि उपधारा (2) के अधीन उसके द्वारा यथाअवधारित किसी व्यक्ति की आयु उस व्यक्ति की सही आयु नहीं थी ।

35. बालक के साक्ष्य को अभिलिखित और मामले का निपटारा करने के लिए अवधि – (1) बालक के साक्ष्य को विशेष न्यायालय द्वारा अपराध

का संज्ञान लिए जाने के तीस दिन के भीतर अभिलिखित किया जाएगा और विलंब के लिए कारण, यदि कोई हों, विशेष न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए जाएंगे ।

(2) विशेष न्यायालय, यथासंभव, अपराध का संज्ञान लिए जाने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर विचारण पूरा करेगा ।

36. साक्ष्य देते समय बालक का अभियुक्त को न दिखना – (1) विशेष न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि बालक किसी भी प्रकार से साक्ष्य को अभिलिखित करते समय अभियुक्त के सामने अभिदर्शित नहीं किया गया है, जब कि उसी समय यह सुनिश्चित करेगा कि अभियुक्त उस बालक का कथन सुनने और अपने अधिवक्ता के संपर्क में है ।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायालय, बालक का कथन वीडियो कांफ्रेंसिंग के माध्यम से या एकल दृश्य दर्पण या पर्दा या ऐसी ही अन्य युक्ति का उपयोग करके अभिलिखित कर सकेगा ।

37. विचारण का बंद कमरे में संचालन – विशेष न्यायालय, मामलों का विचारण बंद कमरे में और बालक के माता-पिता या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में करेगा, जिसमें बालक का विश्वास या भरोसा है :

परंतु जहां विशेष न्यायालय की यह राय है कि बालक की परीक्षा न्यायालय से भिन्न किसी अन्य स्थान पर किए जाने की आवश्यकता है, वहां वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 284 के उपबंधों के अनुसरण में कमीशन निकालने के लिए कार्यवाही करेगा ।

38. बालक का साक्ष्य अभिलिखित करते समय किसी दुभाषिए या विशेषज्ञ की सहायता लेना – (1) जब कभी आवश्यक हो, न्यायालय बालक का साक्ष्य अभिलिखित करते समय किसी ऐसे अनुवादक या दुभाषिए, जो ऐसी अर्हताएं, अनुभव रखता हो और ऐसी फीस के संदाय पर, जो विहित की जाए, की सहायता ले सकेगा ।

(2) यदि बालक मानसिक या शारीरिक रूप से निःशक्त है तो विशेष न्यायालय, बालक का साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए किसी विशेष शिक्षक या बालक से संपर्क की रीति से सुपरिचित किसी व्यक्ति या उस क्षेत्र में किसी विशेषज्ञ, जो ऐसी अर्हताएं, अनुभव रखता हो और ऐसी फीस के संदाय पर जो विहित की जाए, की सहायता ले सकेगा ।

अध्याय 9

प्रकीर्ण

39. विशेषज्ञ आदि की सहायता लेने के लिए बालक के लिए मार्गनिर्देश – राज्य सरकार, ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए जो इस निमित्त बनाए जाएं, गैर-सरकारी संगठनों, वृत्तिकों और विशेषज्ञों या ऐसे व्यक्तियों जिनके पास मनोविज्ञान, सामाजिक कार्य, चिकित्सीय स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और बाल विकास में ज्ञान है, बालक की सहायता करने के लिए पूर्व विचारण और विचारण प्रक्रम पर सहयोजित करने के लिए मार्गनिर्देश तैयार करेगी ।

40. विधिक काउंसेल की सहायता लेने का बालक का अधिकार – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 301 के परंतुक के अधीन रहते हुए बालक का कुटुंब या संरक्षक इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए अपनी पसंद के विधिक काउंसेल की सहायता लेने के लिए हकदार होंगे :

परंतु यदि बालक का कुटुंब या संरक्षक विधिक काउंसेल का व्यय वहन करने में असमर्थ है तो विधिक सेवा प्राधिकरण उसको वकील उपलब्ध कराएगा ।

41. कतिपय मामलों में धारा 3 से धारा 13 तक के उपबंधों का लागू न होना – धारा 3 से धारा 13 (जिसमें दोनों सम्मिलित हैं) तक के उपबंध बालक की चिकित्सीय परीक्षा या चिकित्सीय उपचार की दशा में तब लागू नहीं होंगे जब ऐसी चिकित्सीय परीक्षा या चिकित्सीय उपचार उसके माता-पिता या संरक्षक की सहमति से किए जा रहे हों ।

[1][**42. आनुकल्पिक दंड** – जहां किसी कार्य या लोप इस अधिनियम के अधीन और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 166क, धारा 354क, धारा 354ख, धारा 354ग, धारा 354घ, धारा 370, धारा 370क, धारा 375, धारा 376, धारा 376क, धारा 376ख, धारा 376ग, धारा 376घ, धारा 376ङ या धारा 509 के अधीन भी दंडनीय कोई अपराध गठित होता है वहां, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसे अपराध का दोषी पाया गया अपराधी उस दंड का भागी होगा, जो इस अधिनियम के अधीन या भारतीय दंड संहिता के अधीन मात्रा में गुरुतर है ।

42क. अधिनियम का किसी अन्य विधि के अल्पीकरण में न होना –

---

[1] 2013 के अधिनियम सं. 13 की धारा 29 द्वारा प्रतिस्थापित ।

इस अधिनियम के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे न कि उनके अल्पीकरण में और किसी असंगति की दशा में इस अधिनियम के उपबंधों का उस असंगति की सीमा तक ऐसी किसी विधि के उपबंधों पर अध्यारोही प्रभाव होगा ।]

43. अधिनियम के बारे में लोक जागरूकता – केन्द्रीय सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए सभी उपाय करेंगी कि –

(क) साधारण जनता, बालकों के साथ ही उनके माता-पिता और संरक्षकों को इस अधिनियम के उपबंधों के प्रति जागरूक बनाने के लिए इस अधिनियम के उपबंधों का मीडिया, जिसके अंतर्गत टेलीविजन, रेडियो और प्रिंट मीडिया भी सम्मिलित है, के माध्यम से नियमित अंतरालों पर व्यापक प्रचार किया जाता है ;

(ख) केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों के अधिकारियों और अन्य संबद्ध व्यक्तियों (जिसके अंतर्गत पुलिस अधिकारी भी हैं) को अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन से संबंधित विषयों पर आवधिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है ।

44. अधिनियम के क्रियान्वयन की मानीटरी – (1) यथास्थिति, बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 (2006 का 4) की धारा 3 के अधीन गठित बालक अधिकार संरक्षण के लिए राष्ट्रीय आयोग या धारा 17 के अधीन गठित बालक अधिकार संरक्षण के लिए राज्य आयोग, उस अधिनियम के अधीन उनको समनुदेशित कृत्यों के अतिरिक्त इस अधिनियम के उपबंधों के क्रियान्वयन की मानीटरी ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, करेंगे ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट, यथास्थिति, राष्ट्रीय आयोग या राज्य आयोग को इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध से संबंधित किसी मामले की जांच करते समय वहीं शक्तियां होंगी जो उनको बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 (2006 का 4) के अधीन निहित की गई हैं ।

(3) उपधारा (1) में निर्दिष्ट, यथास्थिति, राष्ट्रीय आयोग या राज्य आयोग इस धारा के अधीन उनके कार्यकलापों को, बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 (2006 का 4) की धारा 16 में निर्दिष्ट रिपोर्ट में भी सम्मिलित करेंगे ।

45. नियम बनाने की शक्ति – (1) केंद्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 19 की उपधारा (4), धारा 26 की उपधारा (2) और उपधारा (3) तथा धारा 38 के अधीन किसी अनुवादक या दुभाषिए, किसी विशेष शिक्षक या बालक से संपर्क करने की रीति से सुपरिचित किसी व्यक्ति या उस क्षेत्र के किसी विशेषज्ञ की अर्हताएं और अनुभव तथा संदेय फीस ;

(ख) धारा 19 की उपधारा (5) के अधीन बालक की देखभाल और संरक्षण तथा आपात चिकित्सीय उपचार ;

(ग) धारा 33 की उपधारा (8) के अधीन प्रतिकर का संदाय ;

(घ) धारा 44 की उपधारा (1) के अधीन अधिनियम के उपबंधों की आवधिक मानीटरी की रीति ।

(3) इस धारा के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा किंतु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

46. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी, जो उसे कठिनाइयां दूर करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों और जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों :

परंतु कोई आदेश इस धारा के अधीन इस अधिनियम के प्रारंभ से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

अनुसूची

[धारा 2(ग) देखिए]

निम्नलिखित के अधीन गठित सशस्त्र बल और सुरक्षा बल

(क) वायु सेना अधिनियम, 1950 (1950 का 45);

(ख) सेना अधिनियम, 1950 (1950 का 46);

(ग) असम राइफल्स अधिनियम, 2006 (2006 का 47);

(घ) बंबई होमगार्ड अधिनियम, 1947 (1947 का 3);

(ङ) सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 (1968 का 47);

(च) केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 (1968 का 50);

(छ) केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949 (1949 का 66);

(ज) तटरक्षक अधिनियम, 1978 (1978 का 30);

(झ) दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25);

(ञ) भारत-तिब्बत सीमा पुलिस बल अधिनियम, 1992 (1992 का 35);

(ट) नौसेना अधिनियम, 1957 (1957 का 62);

(ठ) राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 (2008 का 34);

(ड) राष्ट्रीय सुरक्षक अधिनियम, 1986 (1986 का 47);

(ढ) रेल संरक्षण बल अधिनियम, 1957 (1957 का 23);

(ण) सशस्त्र सीमा बल अधिनियम, 2007 (2007 का 53);

(त) विशेष संरक्षा ग्रुप अधिनियम, 1988 (1988 का 34);

(थ) प्रादेशिक सेना अधिनियम, 1948 (1948 का 56);

(द) राज्य की सिविल बलों की सहायता करने के लिए और आंतरिक अशांति के दौरान दलों को नियोजित करने के लिए या अन्यथा जिनके अंतर्गत सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1958 (1958 का 28) की धारा 2 के खंड (क) में यथापरिभाषित सशस्त्र बल भी हैं, राज्य विधियों के अधीन गठित राज्य पुलिस बल (जिनके अंतर्गत सशस्त्र कांस्टेबुलरी भी हैं) ।

Cover iii

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 195/- उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105